हिन्दी बुलेटिन : 29/2008

खरबूजा उत्पादन प्रौद्योगिकी

डॉ. दिलीप कुमार समादिया

केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान
बीकानेर 334 006, राजस्थान

हिन्दी बुलेटिन : 29/2008

खरबूजा उत्पादन प्रौद्योगिकी

डॉ. दिलीप कुमार समादिया

केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान
बीकानेर 334 006, राजस्थान

उद्धरण : **खरबूजा उत्पादन प्रौद्योगिकी**
हिन्दी बुलेटिन (2008)

प्रकाशक : **डॉ. टी.ए. मोरे**
निदेशक
केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान
बीकानेर 334 006, राजस्थान
दूरभाष 0151-2250147, 2250960

लेखक : **डॉ. दिलीप कुमार समादिया**
वरिष्ठ वैज्ञानिक (बागवानी)

Correct Citation : CIAH/TECH/PUB No. 29
खरबूजा उत्पादन प्रौद्योगिकी
केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

अनुवाद : **प्रेम प्रकाश पारीक**

छायांकन : **संजय पाटिल**

लेज़रटाइपसेट : **एक्सपीडाइट कम्पयूटर सिस्टम्स**
डी-20, द्वितीय तल
रंजीत नगर कामर्शियल कॉम्प्लेक्स
नई दिल्ली-110 008

मुद्रक : **रॉयल ऑफसेट प्रिन्टर्स**
ए-89/1, नारायणा इण्डस्ट्रियल एरिया
फेज-1, नई दिल्ली 110 028

अनुक्रमणिका

पौष्टिक महत्व	1
उत्पत्ति एवं इतिहास	2
वानस्पतिक विवरण	3
उन्नत किस्में	4
जलवायु	10
भूमि	11
खेत की तैयारी	11
खाद व उर्वरक	13
बीज की मात्रा	13
बीज का चयन एवं उपचार	14
बुवाई का समय	14
सिंचाई जल प्रबंधन	16
निराई-गुड़ाई	17
नमी संरक्षण	18
फसल उत्पाद प्रबन्धन	19
प्रतिकूल जलवायु में फसल सुरक्षा	21
कीट एवं नियंत्रण	22

खरबूजा उत्पादन प्रौद्योगिकी

खरबूजा ककड़ी वर्गीय कुल का विशिष्ट सदस्य है। भारत में इसकी खेती लगभग सभी प्रान्तों में की जाती है। देश के उत्तरी राज्य जिनमें उत्तर प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, मध्य प्रदेश एवं बिहार के शुष्क व अर्ध शुष्क क्षेत्रों में इसकी खेती बहुतायत में होती है। व्यापारिक मांग बढ़ने से महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश व तमिलनाडु आदि पश्चिम–दक्षिण प्रांतो में भी इसकी खेती व्यापक रूप से होने लगी है। समूचे भारत वर्ष में खरबूजे का उपयोग बड़ी मात्रा में किया जाने लगा है। खरबूजे के पके फलों का उपयोग अकेले या दूसरे फलों के साथ मिलाकर फल सलाद के रूप में भी किया जाता है। इसके फलों के छोटे–छोटे टुकड़ों में शक्कर (चीनी) मिला कर स्वादिष्ट व्यंजन के रूप में भी खाया जाता है। कच्चे फलों को सब्जी के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। ग्रामीण परिवेश में खरबूजे के छिलकों को ताजा या सुखा कर सब्जी बनाने के काम में लिया जाता है। इसके बीजों की गीरी का उपयोग मेवे, विभिन्न प्रकार के मिष्ठान तथा शीतल पेय पदार्थ बनाने में किया जाता है।

खरबूजे के फल मधुर, शीतल एवं शक्ति वर्धक होते हैं इसलिए इसे गर्मी का टॉनिक भी कहा जाता है। फल पोषण की दृष्टि से भी काफी महत्वपूर्ण होते हैं। इसके फलों में भारी मात्रा में कार्बोहाइड्रेड, विटामिन 'ए' (3420 अन्तर्राष्ट्रीय इकाई) तथा विटामिन 'सी'

(35 मिग्रा.) पाये जाते हैं। बीज की गीरी में 40 से 45 प्रतिशत तेल पाया जाता है। एक सौ ग्राम बीजों के सेवन से 607 किलो कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है। औषधीय उपयोग की दृष्टि से खरबूजे का बड़ा महत्व है। इसकी तासीर ठण्डी होती है। इसका सेवन मूत्र रोगों में लाभकारी होता है तथा छिलकों को पीस कर पानी के साथ पिलाने से खुल कर पेशाब आता है। गर्मी के दिनों में खरबूजे के सेवन से गर्मी और लू के प्रभाव से शरीर सुरक्षित रहता है। गुर्दे की पथरी में खरबूजे का बीज लाभदायक होता है क्योंकि इसमें यूरिक अम्ल पाया जाता है जिसमें पथरी को गलाने की क्षमता होती है। खरबूजे के छिलके को पीस कर चेहरे पर लगाने से दाग व झुर्रियां दूर हो जाती हैं।

पौष्टिक महत्व

खरबूजा एक पौष्टिक फल है। प्रति सौ ग्राम खाने वाले गूदे में नमी (95.2 ग्राम), प्रोटीन (0.3 ग्राम), वसा (0.2 ग्राम), खनिज (0.4 ग्राम), रेशा (0.4 ग्राम), कार्बोहाइड्रेट्स (3.5 ग्राम), ऊर्जा (17 कैलोरी), कैल्शियम (32 मिग्रा), फास्फोरस (14 मिग्रा), आयरन (1.4 मिग्रा), कैरोटीन (169 माइक्रोग्राम), थाइमिन (0.11 मिग्रा), रिबोफ्लेविन (0.08 मिग्रा), नियासिन (0.3 मिग्रा), विटामिन 'सी' (26 मिग्रा) पाए जाते हैं।

उत्पत्ति एवं इतिहास

खरबूजा मूल रूप से उत्तर पश्चिमी भारत का पौधा है, परन्तु इसकी उत्पत्ति का प्रारम्भिक स्थान मध्य अफ्रीका से मध्य एशिया, विशेष कर ईरान की गर्म घाटी का क्षेत्र रहा है। भारत से यह फल चीन, यूरोप, जापान, तथा तुर्की में गया, जबकि नई दुनिया में यह कोलम्बस के बाद प्रचारित हुआ। वर्तमान में खरबूजा अमेरिका, चीन, यूरोप, रूस, ईरान, ईराक, तुर्की तथा भारत सहित कई देशों की एक महत्वपूर्ण फसल है।

पौष्टिक गुणवत्ता एवं व्यापारिक लाभ को देखते हुए यह फल भारत के कई प्रदेशों में मुख्य फसल का रूप ले चुका है। खरबूजा 1980 के दशक एवं उससे पहले नदियों के पाटों की एक मुख्य फसल थी। इसकी खेती नदियों में तरबूज, ककड़ी, लौकी आदि खीरा वर्गीय फसलों के साथ बहुतायत में होती थी। खरबूजा राजस्थान (टोंक व जयपुर), पंजाब (भटिण्डा, लुधियाना, अमृतसर), हरियाणा (कुरूक्षेत्र, सोनीपत), उत्तर प्रदेश (मेरठ, आगरा, मथुरा, कानपुर, इलाहबाद, वाराणसी, जोनपुर, लखनऊ व फैजाबाद), गुजरात (साबरकाठा, खेड़ा, बड़ोदा व पंचमहल), मध्य प्रदेश (होशंगाबाद व खंडवा), महाराष्ट्र (जलगाँव, धुलिया व अकोला), आन्ध्र प्रदेश (कुरनुल चुड़प्पा), कर्नाटक (मंडया) आदि क्षेत्र के नदियों के पाटों की प्रमुख फसल रही है।

वर्तमान में खेती में जागरुकता, फसल विविधकरण एवं सिंचाई संसाधनों के विकास से

खरबूजा भारत के लगभग सभी क्षेत्रों में नदियों के पाटों के अलावा व्यवस्थित खेतों में भी पैदा किया जाने लगा है। राजस्थान के शुष्क व अर्ध शुष्क प्रदेश में खरबूजा भी एक लोकप्रिय फसल है। यहाँ की बनास, चम्बल, माही व इनकी अन्य सहायक नदियों में इसकी खेती सदियों से होती आ रही है। जबकि उन्नत किस्मों के विकास एवं व्यापारिक पहलू को ध्यान में रख कर खरबूजे की व्यावसायिक फसल शुष्क व अर्ध शुष्क जिलों में ग्रीष्म कालीन सिंचित फसल के रूप में भी होने लगी है। नदियों के पाटों में खरबूजे की फसल की बुवाई दिसम्बर में की जाती है जिससे मार्च के अंत से अप्रैल के अंत तक अगेती फसल के रूप में बाजार में इसकी उपलब्धता रहे। सिंचित खेतों में इसकी बुवाई फरवरी–मार्च में की जाती है ताकि बाजार में खरबूजा मई से मध्य जुलाई तक मिलता रहे।

वानस्पतिक विवरण

खरबूजा कुष्माण्ड कुल का (cucurbitaceae) एक वर्षीय फैलने वाला, शाकीय लता या पौधा होता है। इसको अंग्रेजी में मस्क मेलॉन (muskmelon) जिसका वानस्पतिक नाम कुकुमिस मेलो (*Cucumis melo* L.) है। इसके गुणसूत्रों की संख्या 2 एन = 24 है। खरबूजे की पत्तियाँ बड़ी तथा रोऐंदार होती हैं। फूल अधिकांशतः पुं–उभयलिगांश्रयी (andromonoecios)

सारणी 1. शुष्क क्षेत्रों में खरबूजे के लाक्षणिक आधार पर पायी गई जैव विविधता

लक्षण	न्यूनतम	अधिकतम	औसत
बुवाई पश्चात पहला नर फूल खिलने में लगे दिनों की संख्या	31.36	59.73	42.20
बुवाई पश्चात पहला मादा फूल खिलने में लगे दिनों की संख्या	45.46	69.36	54.05
बुवाई पश्चात फलों की पहली तुड़ाई में लगे दिनों की संख्या	81.46	110.33	93.42
गांठ संख्या जहाँ पहला फल जमा	2.26	8.40	5.46
प्रति पौधा फलों का जमाव	4.50	16.13	10.13
विपणन योग्य फलों की संख्या	0.45	5.94	1.82
फल भार (किग्रा)	0.56	2.24	1.26
फल की लम्बाई (सेमी)	7.44	21.91	12.14
फल का व्यास (सेमी)	8.34	16.20	11.16
फल में बीज वाले भाग की चौड़ाई (सेमी)	4.49	10.33	6.31
गूदे की मोटाई (सेमी)	1.72	3.22	2.41
फल में मिठास (%)	3.35	14.18	7.76
फल में बीजों की संख्या	82.66	620.00	437.29
बीजों की लम्बाई (मिली)	10.20	16.33	12.68
100 बीज का भार (ग्राम)	1.23	6.19	3.66
विपणन योग्य फल उत्पादन (किग्रा पौधा)	0.25	7.31	2.24

होते हैं। कुछ किस्मों में नर व मादा फूल अलग–अलग गांठों (monoecious) पर एक ही पौधे में पाए जाते हैं। पौधों में मुख्य,पहली व द्वितीय शाखाओं पर नर फूल समूह में आते हैं तथा बाद में द्वितीय शाखाओं पर एकल उभयलिंगी (hermophrodite) फूल आते हैं। फूल प्रातः 5 से 7 बजे के बीच पूर्ण रूप से खुल जाते हैं। परागण कम तापमान पर (20–25°C) सर्वोत्तम रहता है और यह क्रिया प्रातः 10 बजे तक उच्च स्तर पर रहती है। वर्तिकाग्र परागण के समय से ही 2 घण्टा पूर्व से लेकर 2 घण्टे बाद तक ही ग्राही बनी रहती है।

जैव विविधता की दृष्टि से खरबूजे के पौधों के वानस्पतिक लक्षणों, फूल व फलन के खिलने व बनने की क्षमता, फलों की उत्पादकता एवं फलों के आकार एवं रंग–रूप तथा गुणवत्ता में भारी अंतर पाया गया है। सामान्यतयः खरबूजे के फल गोल, अण्डाकार या दीर्घ वृताकार होते हैं। छिलकों के रंग, उन पर पाई जाने वाली धारियों या जालीयों में भी अंतर पाया जाता है। खाने योग्य गूदे में विविधता के कारण कई बार गूदा फीका या बहुत मीठा मिल जाता है। गूदे का रंग सफेद, हल्के गुलाबी से लेकर गहरा गुलाबी या हरा पाया जाता है। बीज की मात्रा, आकार एवं आंतरिक भाग में भी भिन्नता पाई जाती है। खरबूजे में उपलब्ध जैव विविधता को आधार बनाकर विश्व में व्यापक स्तर पर उन्नत किस्मों का विकास हुआ है। हमारे देश में भी सघन नस्ल सुधार कार्यक्रम के आधार पर राज्य व राष्ट्रीय स्तर पर खरबूजे की कई किस्मों का विकास कर क्षेत्रीय स्तर पर खेती के लिए संस्तुति की गई है।

उन्नत किस्में

खरबूजे में स्थानीय एवं उन्नत किस्में बहुत हैं जो अपने क्षेत्र विशेष में अधिक प्रचलित हैं। स्थानीय किस्मों में उत्पादकता एवं गुणवत्ता स्थिर नहीं होने के उपरान्त भी इनका

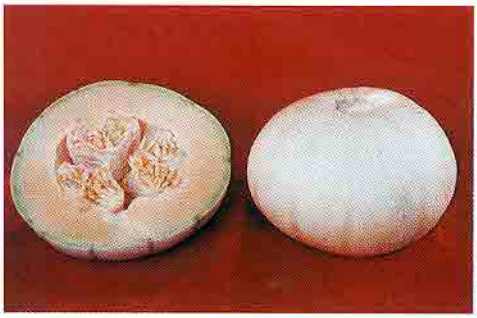

प्रयोग जारी है। जबकि देश में क्षेत्रवार खरबूजे की उन्नत किस्में उपलब्ध हैं। उन्नत एवं संकर किस्मों में अधिक उत्पादन एवं सुनिश्चित गुणवत्ता युक्त उपज निश्चित है जिससे बाजार में एक समान रूप के विश्वसनीय फल उपलब्ध कराए जा सकते हैं। कुछ प्रमुख किस्मों का वर्णन निम्न प्रकार है:–

हरा मधु

इस किस्म का विकास पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना द्वारा किया गया है। फल गोलाकार तथा हरे, सफेद रंग के होते हैं, जिन पर हरी धारियां पाई जाती है। फल का गूदा भी हल्का हरा होता है जिसमें 12 से 15 प्रतिशत तक मिठास होती है। यह एक पछेती किस्म है। इस किस्म के पौधों की औसतन लम्बाई 2.5 मीटर होती है तथा फलों का औसतन भार एक किलोग्राम होता है। यह किस्म व्यापक क्षेत्र के लिए अनुकूल है। इस किस्म के फलों की भण्डारण एवं परिवहन क्षमता कम होती है। यह प्रजाति चूर्णीय आसीता एवं मृदुरोमिल आसिता रोग के प्रति काफी संवेदनशील है।

पूसा शरबती

इस किस्म का विकास भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा श्कुटामाश नामक वंशक्रम को एक अमरीकी किस्म श्कैन्टेलूप रेजिस्टैन्टश के साथ संकरित करा कर किया गया है। यह अगेती किस्म है। नदी के पाटों में खेती के लिए इस किस्म को उपयुक्त माना गया है। इसके फल गोल, छिलकों पर एक जाल सा होता है जिस पर हरी धारियां पाई जाती हैं। गूदा मोटा एवं फलों में बीच का खाली भाग कम होता है। गूदे का रंग नारंगी एवं मिठास 11 से 12 प्रतिशत तक होती है। फल का औसत भार 800 ग्राम तथा पौधों की औसत लम्बाई 1.5 मीटर होती है।

पूसा मधुरस

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली से विकसित इस किस्म के फल गोल, चपटे, गहरे हरे रंग के धारी युक्त होते हैं। फल का गूदा नारंगी रंग का तथा रसीला होता

है जिसमें 12 से 14 प्रतिशत तक मिठास होती है। फलों का औसतन भार 1.0 किलोग्राम होता है। इस किस्म की बेलों में फैलाव अधिक होता है। फसल 90 से 95 दिनों में पक कर तैयार हो जाती है।

पूसा रसराज

यह एक संकर किस्म है। इस किस्म को भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली से विकसित किया गया है। फल चिकने, लम्बोत्तर व धारी रहित होते हैं। गूदा हरा तथा बहुत मीठा होता है जिसमें 12 से 13 प्रतिशत शर्करा होती है। फल का औसत वजन 1.0 किग्रा होता है। फल तुड़ाई 75 से 80 दिन बाद प्रारम्भ हो जाती है।

दुर्गापुरा मधु

कृषि अनुसंधान केन्द्र दुर्गापुरा, जयपुर द्वारा विकसित इस किस्म के फल मध्यम आकार के लम्बोत्तर होते हैं। यह एक अगेती किस्म है तथा फलों का औसत वजन 500 से 700 ग्राम होता है। छिलका चिकना एवं हरा–पीलापन लिए होता है। फल का गूदा हल्का हरा, स्वादिष्ट एवं रसीला होता है। गूदे में 12–14 प्रतिशत तक मिठास होती है। फल का बीज वाला भाग बड़ा होता है।

पंजाब सुनहरी

इस किस्म को पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना ने विकसित किया है। यह एक अगेती किस्म है। फल गोलाकार एवं औसतन 1.00 किलोग्राम भार के होते हैं। छिलका हल्का हरा तथा मोटा होता है। गूदा मोटा एवं नारंगी रंग का रसीला होता है जिसमें 11.0 प्रतिशत मिठास होती है। इस किस्म के फल भण्डारण एवं परिवहन के लिए काफी उपयुक्त हैं। इसमें चूर्णीय आसीता एवं मृदुरोमिल आसिता रोगों का प्रभाव नहीं होता है।

एम.एच.-10

इस किस्म को पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना से मादा पितृ (डब्लू आई 998) और नर पितृ (पंजाब सुनहरी) के बीच संकरण से विकसित किया गया है। इस किस्म के पौधे मध्यम बढ़वार लिए होते हैं। फल गोल जिनका औसत वजन 900 ग्राम होता है। गूदा मोटा एवं हल्का दूधिये रंग का एवं रसीला होता है।

पंजाब हाइब्रिड

पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना द्वारा नर बध्य लाइन (एम. एस.–1) तथा हरा मधु के बीच संकरण द्वारा इस किस्म को विकसित किया गया है। पौधों की बेलें बड़ी होती हैं। फल हल्के हरे पीले रंग के होते हैं। इन पर हल्के हरे रंग की धारियां होती हैं।

छिलका जालीदार होता है। गूदा नारंगी रंग का एवं सुगंधित होता है। गूदे में 12 प्रतिशत तक मिठास होती है। यह किस्म फल मक्खी एवं चूर्णीय आसिता के प्रति सहिष्णु है।

अर्का राजहंस

इस किस्म का विकास भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बैंगलोर द्वारा किया गया है। यह एक मध्य अगेती किस्म है। फल अण्डाकार, छिलका सफेद रंग का जाली युक्त होता है। गूदा मोटा, सफेद व बहुत मीठा होता है जिसमें 12 से 14 प्रतिशत तक मिठास होती है। फल का औसतन भार 1.0 से 1.5 किलोग्राम होता है। यह किस्म चूर्णीय आसिता रोग के प्रतिरोधिता पाई जाती है।

अर्का जीत

यह एक अगेती किस्म है जिसका विकास भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बैंगलोर द्वारा किया गया है। फल छोटे तथा गोल होते हैं तथा छिलका नारंगी रंग का होता है। फल बहुत अधिक मीठे होते हैं जिनमें 15 से 17 प्रतिशत तक शर्करा होती है। फल का औसतन भार 400 ग्राम होता है।

हिसार मधुर

इस किस्म को चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार से विकसित किया गया है। फल गहरे लाल रंग के होते हैं जिस पर 10 धारियां होती है। गूदा नारंगी रंग का एवं सुगंधित होता है। इसमें मिठास 8.5 प्रतिशत तक होती है। यह एक अगेती किस्म है तथा 75–80 दिन में फल तोड़ने योग्य हो जाते हैं।

आर.एम.-43

कृषि अनुसंधान केन्द्र दुर्गापुरा, जयपुर द्वारा विकसित इस किस्म के फल हरी धारियों युक्त लम्बोत्तर होते हैं। फल आकार में छोटे तथा औसतन वजन 550 ग्राम होता है। इस किस्म के पौधे काफी बढ़ने वाले होते है। फलों की पहली तुड़ाई बुवाई के 80 से 85 दिनों बाद प्रारम्भ हो जाती है। फलों का गूदा हरा एवं सुगंधित होता है जिसमें 12–14 प्रतिशत तक मिठास होती है। बीज वाला भाग छोटा होता है। फलों में लम्बे समय तक भण्डारण एवं परिवहन क्षमता होती है।

एम.एच. वाई-3

यह किस्म कृषि अनुसंधान केन्द्र दुर्गापुरा, जयपुर द्वारा विकसित की गई है। दुर्गापुरा मधु व पूसा मधुरस में संकरीकरण की चयन प्रक्रिया अपना कर इसको विकसित किया गया है। इसके पौधे अधिक बढ़ने वाले तथा 2.5 से 3 मीटर तक लम्बे होते हैं। बुवाई के 45

दिन बाद फूल तथा 95–100 दिन बाद फलों की तुड़ाई प्रारम्भ हो जाती है। फल चपटे, गोल, चिकने तथा हल्के हरे–पीले रंग के होते हैं। फल में बीज वाला भाग मध्यम होता है तथा गूदा हरा एवं मुलायम होता है। गूदे में मिठास 13–16 प्रतिशत तक होता है। फलों का औसत भार 700 से 800 ग्राम तथा एक हेक्टेयर क्षेत्र से 150 से 200 क्विंटल फलोत्पादन हो जाता है।

सारणी 2. शुष्क क्षेत्र की जलवायु में खरबूजे की किस्मों में पादप वृद्धि एवं फलन के लक्षण

किस्में	पहला नर फूल खिलने में लगे दिनों की संख्या	पहला उभयलिंगी फूल खिलने में लगे दिनों की संख्या	गांठ संख्या जहाँ पहला उभयलिंगी फूल खिला	एक पौधे पर शाखाओं की संख्या	बेल की लम्बाई (मीटर)
दुर्गापुरा मधु	30.85	45.17	7.51	6.25	1.93
आर. एम.–43	29.12	43.74	9.14	5.42	1.85
एम. एच. वाई.–3	38.56	48.12	13.17	6.13	1.76
एम. एच. वाई.–5	26.12	45.12	9.13	5.74	1.72
पंजाब सुनहरी	41.58	60.57	8.13	6.12	1.84
अर्का जीत	35.62	51.54	7.54	6.02	1.52
पंजाब हाईब्रिड	26.56	42.87	7.13	6.87	2.20
एम.एच. एल.–10	27.19	41.85	6.12	6.13	2.12
एम. आर.–12	28.13	46.12	6.75	5.74	2.05
सी.एच.ई.एस.–238	24.68	40.15	5.93	7.13	2.09
सी. एच. ई. एस.–268	27.12	46.15	7.14	5.23	2.09
सी. एच. ई. एस. 20–1	29.14	43.12	8.12	5.14	1.94
पूसा मधुरस	33.32	47.15	8.37	5.13	1.85
औसत	30.61	46.28	8.01	5.93	1.92
सी. वी. (%)	4.48	2.69	14.62	18.38	3.67
सी. डी. (5%)	2.57	2.09	1.96	1.83	0.005

एम.एच.वाई.-5

कृषि अनुसंधान केन्द्र दुर्गापुरा, जयपुर दुर्गापुरा मधु एवं हरा मधु किस्मों में संकरीकरण द्वारा इस किस्म का विकास कर चयन किया गया है। पौधे 2.0 से 2.5 मीटर लम्बे तथा फैलने वाले होते हैं। बुवाई के 45 दिन बाद फूल तथा 95 दिन बाद पहली तुड़ाई प्रारम्भ हो जाती है। फल चपटे, गोल, एवं नुकीले, चिकने तथा हल्के पीले रंग के होते हैं। गूदा हल्का हरा, मुलायम जिसमें मिठास 13 से 16 प्रतिशत तक होती है। फलों का औसतन भार 700 से 800 ग्राम होता है। बीज वाला भाग मध्यम आकार का होता है। एक हेक्टेयर क्षेत्र से 150 से 200 क्विंटल फल उत्पादन हो जाता है।

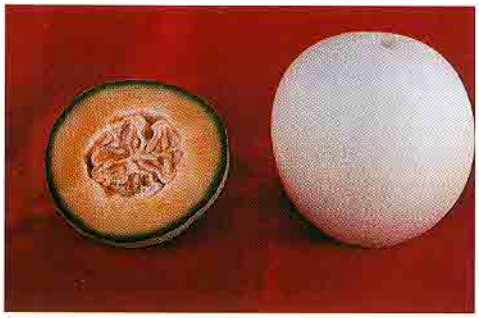

आर.एन.-50

इस किस्म की संस्तुति दुर्गापुरा मधु एवं सलेक्शन 1 में संकरीकरण कर चयन क्रिया के पश्चात कृषि अनुसंधान केन्द्र दुर्गापुरा द्वारा की गई है। इसके पौधे 2.5 मीटर लम्बे व अच्छे फैलने वाले होते हैं। फल लम्बोत्तर गोल, छिलका हरा पीला जिस पर 10 हरी धारियां होती हैं। गूदा हरा एवं मिठास 14 से 16 प्रतिशत तक होती है। फलों का औसतन वजन

सारणी 3. शुष्क क्षेत्र में खरबूजे की किस्मों में फल उत्पादन का आकलन

किस्में	एक पौधे में फलों के जमाव दिनों की संख्या	पहली फलन तुड़ाई में लगे लगे दिनों की संख्या	प्रति पौधा फलों की संख्या उभयलिंगी फूल खिला	गर्मी से जले एवं फटे फलों की प्रति पौधा संख्या	विपणन योग्य प्रति पौधा फल उत्पादन (किलोग्राम)
दुर्गापुरा मधु	8.71	97.22	4.22	1.89	2.65
आर. एम.–43	6.72	89.51	3.64	1.74	1.93
एम. एच. वाई.–2	8.43	88.13	3.90	2.05	1.85
एम. एच. वाई.–5	13.17	85.71	3.95	1.93	1.65
पंजाबी सुनहरी	11.52	92.41	5.13	2.13	3.2
अर्का जीत	5.13	92.53	3.22	2.14	0.53
पंजाबी हाईब्रिड	6.12	85.14	3.72	1.87	2.49
एम. एच. एल.–10	6.17	88.13	3.87	1.74	4.52
एम. आर.–12	8.12	89.14	5.14	2.13	3.45
सी. एच. ई. एस.–238	14.14	81.42	7.13	1.04	7.54
सी. एच. ई. एस.–268	11.84	89.14	5.97	2.02	2.15
सी. एच. ई. एस.20–1	8.13	89.25	3.12	1.73	1.21
पूसा मधुरस	7.41	93.13	4.17	1.83	2.85
औसत	8.89	89.29	4.4	1.86	2.77
सी. वी. (%)	13.40	1.61	21.85	10.31	22.48
सी. डी. (5%)	1.99	2.41	1.60	0.33	1.048

सारणी 4. शुष्क क्षेत्र में खरबूजे की किस्मों के फलों की गुणवत्ता का आकलन

किस्में	फल भार (किग्रा)	फल की लम्बाई (सेमी)	फल की गोलाई (सेमी)	फल में बीज वाले भाग की चौड़ाई (सेमी)	गूदे की मोटाई (सेमी)	मिठास (%)
दुर्गापुरा मधु	1.12	22.54	32.5	6.84	2.14	9.25
आर. एम.–43	0.95	21.02	35.24	5.45	3.12	9.15
एम. एच. वाई.–2	0.98	18.24	36.54	6.8	2.93	8.41
एम. एच. वाई.–5	0.75	14.86	33.24	7.84	2.13	9.13
पंजाबी सुनहरी	0.98	15.15	31.87	4.67	2.74	10.24
अर्का जीत	0.32	10.14	27.57	4.27	1.05	5.67
पंजाबी हाईब्रिड	1.21	18.54	42.54	6.84	2.93	11.42
एम. एच. एल.–10	2.12	25.41	45.12	7.12	3.94	8.24
एम. आर.–12	1.15	22.57	42.56	7.54	3.54	10.24
सी. एच. ई. एस.–238	1.25	14.58	42.13	6.53	3.14	12.14
सी. एच. ई. एस.–268	0.55	13.12	32.17	4.34	2.51	8.47
सी. एच. ई. एस. 20–1	0.85	17.54	36.12	7.54	3.15	9.24
पूसा मधुरस	1.25	17.55	43.26	7.51	3.12	10.28
औसत	1.03	17.79	36.99	–	–	–
सी. वी. (%)	14.42	7.96	3.71	–	–	–
सी. डी. (5%)	0.23	2.37	2.30	–	–	–

500 ग्राम होता है तथा बीज वाला भाग मध्यम आकार का होता है। बुवाई के 80 से 85 दिनों बाद पहली फलन तुड़ाई पर आ जाती है एवं प्रति हेक्टेयर 150 से 200 क्विंटल उत्पादन होता है।

उपरोक्त उन्नत किस्मों के अतिरिक्त हमारे देश में खरबूजे की कई स्थानीय प्रजातियाँ है जो कि क्षेत्र विशेष में उगाई जाती हैं एवं बहुत प्रचलित भी है। इन स्थानीय किस्मों के फलों में समानता न होकर विविधता अधिक होती है। स्थानीय किस्मों की गुणवत्ता भी अविश्वसनीय होती है। दूसरी तरफ देश में निजी कम्पनियों द्वारा खरबूजे की कई संकर व उन्नत किस्मों का विपणन भी होता है। यह किस्में कई फसल उत्पादक क्षेत्रों में काफी प्रचलित हैं एवं इनके फल बाजार में अच्छी गुणवत्ता एवं विश्वसनीयता के लिए जाने जाते हैं। निजी कम्पनियों के बीज किसानों को सरलता से उपलब्ध हो जाने से इनका प्रयोग व्यापक स्तर पर बढ़ता जा रहा है।

जलवायु

खरबूजा गर्म और शुष्क जलवायु का पौधा है। हमारे देश के सभी शुष्क व अर्ध शुष्क

प्रदेशों में इसकी खेती की व्यापक सम्भावनाएं हैं। यह पाले के प्रति अत्यन्त सहिष्णु फसल है। चमकीली धूप एवं अपेक्षाकृत कम आर्द्रता वाले क्षेत्रों में उत्तम गुणवत्ता के खरबूजे पैदा किए जा सकते हैं। आर्द्रता अधिक होने पर फलों के पकने में लम्बा समय लगता है तथा पत्तियों पर बीमारियों का आक्रमण बढ़ जाता है। फल पकते समय गर्म हवाऐं या पानी बरस जाने से फलों की गुणवत्ता पर अत्यधिक बुरा प्रभाव पड़ता है तथा कई बार बड़े एवं पकने योग्य फल फट जाते हैं। बुवाई एवं प्रारम्भिक बढ़वार की अवस्था में 20–24 डिग्री सेल्सियस तथा बढ़वार एवं उपज के लिए 30–35 डिग्री सेल्सियस तापमान उत्तम पाया गया है। देश के उत्तरी पश्चिमी मरु प्रदेश में जहाँ तापमान 42–45 डिग्री सेल्सियस तक जाता है वहाँ पर भी उत्तम गुणवत्ता युक्त खरबूजे की पैदावार सम्भव है।

भूमि

खरबूजे की खेती अनेक प्रकार की मृदाओं में की जा सकती है परन्तु अच्छी फसल के लिए बलुई दोमट भूमि उत्तम होती है। भारी मिट्टियाँ इसके लिए उपयुक्त नहीं रहती। सामान्यतः खरबूजे की खेती नदियों के पाटों की रेतीली भूमि में की जाती है परन्तु समतल सींचित खेतों एवं सूखे तालाबों के क्षेत्रों में भी इसकी खेती की जा सकती है। व्यवस्थित एवं लाभप्रद खेती के लिए पानी के अच्छे निकास वाली बलुई दोमट भूमि एवं मरुस्थलीय खेतों की रेतीली मिट्टी सर्वोत्तम है। फसल की बढ़िया वानस्पतिक वृद्धि एवं उपज के लिए खेत में पर्याप्त जीवांश मात्रा का होना बहुत ही जरूरी है। खेत की मृदा का पी. एच. मान 6 से 7 खरबूजे के लिए सर्वोत्तम रहता है।

खेत की तैयारी

हमारे देश में खरबूजे की खेती के लिए प्रायः तीन प्रकार से खेत तैयार किए जाते हैं। पहले नदियों के पाटों में विशेष तरह से तैयार किए खेत हैं जहाँ खरबूजे की खेती साधारणतः असिंचित होती है। नदियों के पाटों में वर्षा ऋतु समाप्त होने के बाद खेत तैयार करना प्रारम्भ किया जाता है। यहां एक निश्चित आकार में छोटे–छोटे खेत जैसी आकृति बनाई जाती हैं और इनमें बड़ी मेड़े या कुण्ड बना कर देशी खाद लगाकर तैयार कर लिए जाते हैं। इस तरह के खेतों में अगेती फसल के रूप में खरबूजा उत्पादन किया जाता है। राजस्थान की बनास, चम्बल, माही, जाखम, एवं अन्य सहायक नदियों में नवम्बर में खेत तैयार कर दिसम्बर में फसल की बुवाई की जाती है। नदियों के पाटों वाली फसल मार्च के अंत में तुड़ाई पर आ जाती है।

दूसरी तरह के खेत जहाँ पर खरबूजा उत्पादन किया जाता है वह तालाब (pond, water resvior) होते हैं जहाँ पर वर्षा ऋतु की समाप्ति के बाद जो भू–भाग धीरे–धीरे खाली

होकर सूख जाता है उस क्षेत्र को नवम्बर में खरबूजा उत्पादन के लिए तैयार किया जाता है। इस तरह तैयार खेतों को बड़ी–बड़ी क्यारियों का रूप देकर उसमें छोटी क्यारियों में दिसम्बर में फसल की बुवाई की जाती है। इन खेतों में तथा अगेती फसल के रूप में मार्च के अंत से अप्रैल के अंत तक तुड़ाई पर आ जाती है। तालाब वाले खेतों में खरबूजे की अच्छी पैदावार के लिए 2–3 सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है जो कि तालाब या कुओं के जल से इन खेतों को सींचा जाता है।

ग्रीष्म कालीन व्यवसायिक फसल सिंचित खेतों में की जाती है। अन्य ककड़ी वर्गीय फसलों की तरह खरबूजे की फसल के लिए भी उचित जल निकास एवं अच्छे जीवांश वाला उपजाऊ खेत का चयन किया जाता है। सिंचित खेतों में बुवाई फरवरी–मार्च के महिनों में की जाती है तथा मई–जुलाई तक फल बाजार में उपलब्ध हो जाते हैं। राजस्थान के शुष्क व अर्ध शुष्क प्रदेश में खरबूजे की सफल खेती हेतु प्रक्षेत्र का चुनाव एवं उसकी तैयारी पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। शुष्क क्षेत्र की जलवायु अत्यधिक कठोर है एवं यहाँ तापमान भी अधिक रहता है। अत्यधिक गर्मी के प्रभाव से खेतों की रेतीली या बलुई दोमट मिट्टी जल्दी सूख जाती है। ग्रीष्मकाल में तेज हवाएं चलने के कारण उपजाऊ मिट्टी एक स्थान से उड़ कर दूसरे स्थान पर चली जाती है जिससे खेत की उर्वरा शक्ति कमजोर पड़ जाती है। इसलिए अच्छी उत्पादकता के लिए प्रक्षेत्र प्रबन्धन की योजना अपना कर फसल उत्पादन कार्य करने की आवश्यकता है। अच्छी फसल उत्पादन हेतु खेत में वर्षा जल संग्रहण, मृदा व नमी संरक्षण जैसे कार्यों को योजना बद्ध ढंग से अपनाना चाहिए। बागवानी में सब्जी उत्पादन के लिए ऐसी योजनाओं को अपनाना चाहिए जिससे प्रक्षेत्र में अधिक उत्पादन के लिए अनुकूल वातावरण तैयार हो सके। शुष्क व अर्ध शुष्क प्रदेश में वातावरणीय प्रकोप जैसे अत्यधिक तापमान, तेज धूप, गर्म 'लू' के थपेड़ों एवं धूल भरी आंधियों के प्रकोप से फसलों को बचाने के लिए खेत में उचित प्रकार के स्थानीय पेड़–पौधों को व्यवस्थित ढंग से लगाना चाहिए एवं प्रक्षेत्र में वायु रोधी पट्टिकाओं का निर्माण करना चाहिए। फसल व वातावरण को अनुकूल बनाने वाले पेड़–पौधों को जंगली जानवरों से बचाने के लिए प्रक्षेत्र के चारों ओर बाड़ी या तार–बंदी करना अत्यंत आवश्यक है।

साधारणतः खरबूजे के व्यवस्थित ग्रीष्म कालीन फसल उत्पादन के लिए खेत को दिसम्बर–जनवरी के महिने में गहरी जुताई कर खाली छोड़ देना चाहिए जिससे सर्द ऋतु में होने वाली वर्षा (मावठ) का पानी खेत में ही संग्रहित हो सके। फरवरी माह में खेत को दो बार हैरो से जुताई कर पाटा लगाना चाहिए। खेत की अंतिम जुताई के पहले 200–250 क्विंटल/हेक्टेयर गोबर की सड़ी खाद पूरे खेत में अच्छी तरह बिखरावें। फसल को दीमक व अन्य भूमिगत कीड़ों से बचाने के लिए मिथाइल पेराथियान (2%) या एन्डोसल्फान (4%) दवा का 25 किलोग्राम पाउडर खेत में पाटा लगाने से पहले भुरक कर भूमि में मिला देना

चाहिए। इस तरह तैयार खेत में क्यारी, नाली या कुण्ड विधि से एकल या मिश्रित फसल के रूप में बुवाई की जा सकती है।

खाद व उर्वरक

समेकित खाद व उर्वरक प्रबन्धन द्वारा एक ओर जहां खरबूजे में अच्छी बढ़वार व उत्पादन सम्भव है वहीं दूसरी ओर खेत की उत्पादन क्षमता सुव्यवस्थित रखी जा सकती है। रेतीली बालू वाले खेतों में मृदा की उर्वरा शक्ति बनाए रखने के लिए प्रति वर्ष 200–250 क्विंटल गोबर की सड़ी खाद या 5–6 ट्रेक्टर ट्रॉली भेड़–बकरियों की मींगनी की खाद प्रति हेक्टेयर अवश्य दें। इसके अतिरिक्त व्यवस्थित ढंग से खेती के लिए 80 किलोग्राम नाइट्रोजन व 40–50 किलोग्राम फॉस्फोरस व पोटाश उर्वरक के रूप में प्रति हेक्टेयर की दर से देना चाहिए। नाइट्रोजन की आधी मात्रा एवं फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई हेतु प्रारम्भिक तैयारियाँ जिसमें क्यारियाँ अथवा नालियाँ बनावें, उसी समय दें जिससे उर्वरकों का उचित लाभ फसल को मिल सके। नाइट्रोजन की शेष मात्रा को यूरिया के रूप में 2 से 3 भागों में बाँट कर देना चाहिए। इसके लिए 40–50 किलोग्राम यूरिया का भुरकाव बुवाई से 30 से 35 दिनों बाद करें जब बेलों का फैलाव एवं नर फूलों का आना प्रारम्भ हो तथा 50 किलोग्राम यूरिया बुवाई के 45–50 दिन बाद जब पौधों में फल जमाव प्रारम्भ होता है, तब देना अधिक लाभदायक होता है। यूरिया का भुरकाव करते समय ध्यान रखें कि खेत में पर्याप्त नमी हो अथवा सिंचाई करने के तुरन्त पश्चात यूरिया का भुरकाव करें। नाली अथवा कुण्ड विधि से बोई गई फसलों में सिंचाई के तुरंत बाद ही नालियों अथवा कुण्डों में यूरिया का भुरकाव करें। अच्छी वानस्पतिक वृद्धि के लिए फसल की बुवाई के 25–30 एवं 40–45 दिनों बाद यूरिया के 2 प्रतिशत घोल का हल्का छिड़काव करें।

बीज की मात्रा

किस्म, अंकुरण क्षमता, बुवाई की विधि एवं समय के अनुसार खरबूजे में बीज की मात्रा निर्भर करती है। अच्छी पैदावार के लिए खेत में पर्याप्त मात्रा में पौधों की संख्या का होना आवश्यक है। नाली या कुण्ड विधि से बुवाई करने पर 1.5 से 2.0 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त रहेगा। नदियों या तालाब के पाटों में खरबूजे की खेती के लिए बीज की मात्रा अधिक चाहिए क्योंकि कई बार जंगली छिपकलियां, गिलहरी, पक्षी एवं जंगली पशु नवांकुरों को बुरी तरह से प्रभावित करते हैं। खेतों में भी बुवाई से 15–20 दिनों तक जंगली छिपकली, गिलहरी एवं पक्षियों का बीजों एवं नवांकुरों पर आक्रमण होता है अतः एक स्थान पर 3–4 बीजों की बुवाई करनी चाहिए। बुवाई के 15–20 दिनों बाद प्रत्येक बुवाई स्थल पर 1–2 स्वस्थ पौधे रख कर शेष निकाल देने चाहिए।

बीज का चयन एवं उपचार

अच्छी पैदावार के लिए क्षेत्रीय जलवायु को ध्यान में रखकर उन्नत किस्मों के स्वस्थ्य एवं अच्छी अंकुरण क्षमता वाले बीजों को काम में लेना चाहिए। खरबूजे की किस्मों का चयन करते समय क्षेत्रीय जलवायु, फसल उत्पादन करने की प्रणाली एवं सिंचाई जल संसाधन को ध्यान में रखकर करना चाहिए। बीजों की बुवाई से पहले कैप्टान या थाइरम या बैवेस्टिन नामक दवा से उपचारित अवश्य करें। एक किलो बीज को उपचारित करने के लिए उपरोक्त में से कोई भी एक दवा की 2 से 3 ग्राम मात्रा पर्याप्त रहती है। अच्छे एवं शीघ्र अंकुरण के लिए खरबूजे के बीजों को 4 से 6 घंटो तक पानी में डुबो कर रखें। इसके पश्चात पानी के तले में बैठे बीजों को अलग कर टाट की गीली पोटली में बाँध लें। इस तैयार पोटली को रात भर गोबर की खाद के गड्ढे में या गड्ढा बना कर जमीन में गाड़ दें। इस प्रकार बुवाई करने से बीजों का जमाव अच्छा रहेगा।

बुवाई का समय

नदियों के पाटों में खरबूजे की फसल की बुवाई दिसम्बर माह में की जाती है। उत्तरी एवं मध्य भारत में जहाँ सर्दी अधिक पड़ती है वहाँ सिंचित खेतों में फसल उत्पादन के लिए बुवाई फरवरी–मार्च में की जानी चाहिए है। अगेती फसल के लिए नर्सरी में प्लास्टिक की थैलियों में रोप भी तैयार की जा सकती है। दक्षिणी भारत में जहाँ ठण्ड का प्रभाव कम होता है वहाँ पर खरबूजे की बुवाई दिसम्बर–जनवरी में की जाती है जबकि पर्वतीय क्षेत्रों में इसकी बुवाई अप्रैल–मई में की जा सकती है।

बुवाई की विधियां

व्यावसायिक रूप से खरबूजे का उत्पादन नदियों व तालाबों के पाटों एवं व्यवस्थित खेतों में किया जाता है। नदियों के पाटों में इसकी खेती के लिए वर्षा ऋतु की समाप्ति के पश्चात नदी या तालाब के उस भाग का चयन किया जाता है जहाँ पर इसकी खेती होने की सम्भावना होती है। चयनित भू–भाग को उसकी वस्तु स्थिति के अनुरूप ही तैयार कर फसल बुवाई एवं सुरक्षा की तैयारियाँ प्रारम्भ की जाती हैं। फसल बुवाई के लिए बड़े आकार के कुण्ड बनाए जाते हैं एवं इन कुण्डों में एक निश्चित दूरी पर खड्डे बनाकर देशी खाद भर दी जाती है। दिसम्बर माह में इन तैयार कुण्डों में खरबूजे के साथ–साथ अन्य ककड़ी वर्गीय फसलें जैसे तरबूज, लौकी, व तुरई आदि की भी बुवाई की जाती है। जहाँ तालाबों के सूखे स्थानों में खरबूजे की खेती करनी होती है, वहाँ पर चयनित भू–भाग को खेती के लिए तैयार किया जाता है। फसल उत्पादन क्षेत्र को पहले क्यारियों में विभक्त किया जाता है। इन क्यारियों में 1.0–1.5 मीटर के अंतराल पर हल्के गहरे कुण्ड बनाए

जाते हैं तथा इनमें निश्चित दूरी पर बुवाई की जाती है। तालाब के पाटों में बुवाई का कार्य दिसम्बर–जनवरी में कर अगेती फसल ली जाती है।

व्यावसायिक स्तर पर खरबूजा उत्पादन में ग्रीष्मकालीन फसल के लिए सिंचाई प्रबन्धन किया जाता है। इस व्यवस्थित उत्पादन के लिए मुख्यतः क्यारी या नाली विधि से खेती की जाती है। क्यारी विधि से खेती करने के लिए खेत की तैयारी के पश्चात सम्पूर्ण क्षेत्र को छोटी–छोटी क्यारियों (4–10 × 4–10 मीटर) में विभक्त कर लिया जाता है। इन क्यारियों को समतल कर 1.0–1.5 की दूरी पर छोटे–छोटे कुण्ड बना दिये जाते हैं। तैयार कुण्डों में 30–50 सेमी की दूरी पर बीज बोया जाता है। प्रत्येक स्थान पर 3–5 बीज बोते हैं परन्तु जब पौधों में 2 से 4 वास्तविक पत्तियाँ आती हैं तब एक स्थल पर एक या दो स्वस्थ पौधे रख कर शेष को निकाल देते हैं।

वैज्ञानिक ढंग से खरबूजे की खेती के लिए नाली विधि को सर्वोत्तम पाया गया है। केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर में शोध कार्य के आधार पर नाली विधि से फसल बुवाई अधिक उपयुक्त पाई गई है। पाटा लगा कर समतल किए खेत में 1.5–2.0 मीटर दूरी पर 50–60 सेमी चौड़ाई की हल्की गहरी नालियाँ बना ली जाती हैं। नालियों की लम्बाई 20 से 25 मीटर तक ही सीमित रखनी चाहिए एवं उनको पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर ही बनाएं। रेखांकन कर बनाई गई इन नालियों में खाद व उर्वरकों को अच्छी तरह से मिलाकर समतल कर दिया जाता है। नालियों के अंदर की उत्तरी ढलान के किनारे 50–50 सेमी दूरी पर खरबूज के 3–4 बीज को एक स्थान पर बोया जाता है। इस विधि से बुवाई करने के लिए 1.5 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त रहता है। पौधे 18 से 20 दिनों के हों अथवा उनमें 2 से 4 वास्तविक पत्तियाँ आ जाए तब प्रत्येक स्थान पर एक या दो स्वस्थ पौधे रख कर शेष को निकाल दें। जब खरबूजे के पौधे 30–35 दिनों के होने लगें तब उनको नालियों से बाहर की ओर बेल फैलने वाली जगह की ओर मोड़ देना चाहिए। बेल फैलने वाले 1.5–2.0 मीटर चौड़े क्षेत्र में घास–फूस की पलवार कर शुष्क क्षेत्रीय जलवायु में उत्तम गुणवत्ता का खरबूजा उत्पादन किया जा सकता है। नाली

विधि से खेती करने पर खाद, उर्वरक व सिंचाई इन्हीं नालियों द्वारा ही की जाती है जिससे संसाधनों की काफी बचत होती है। पौधों की प्रारम्भिक अवस्था में देखभाल व निराई–गुड़ाई कार्य अच्छी तरह से किया जा सकता है। नालियों एवं इसके आस–पास के ढलान से वर्षा जल अधिक मात्रा में संग्रहण होता है जो फसल के लिए उपयोगी रहता है। खरबूजे में नाली विधि से खेती कर लगभग एक तिहाई खाद–उर्वरक, सिंचाई जल एवं मानव श्रम की बचत सम्भव है।

सिंचाई जल प्रबंधन

क्षेत्रीय जलवायु को आधार बनाकर फसल उत्पादन तकनीकों का विकास करते समय उपज, लागत, जल संरक्षण, स्थानीय संसाधनों का समुचित उपयोग एवं स्थिरता आदि बातों को ध्यान में रखा जाना आवश्यक है। खरबूजे में नाली विधि से फसल उत्पादन एवं सिंचाई द्वारा एक तिहाई (33 प्रतिशत) जल की बचत होती है। क्यारी विधि में जहाँ पूरे क्षेत्र की फसल में सिंचाई करनी पड़ती है वहीं नाली विधि से केवल नालियों में ही पौधों को सींचा जाता है। नाली विधि में बेल फैलने वाला क्षेत्र असिंचित रखा जाता है। किसान क्यारी विधि से बुवाई कर फव्वारा पद्धति (sprinkler system) से भी सिंचाई करते हैं और इस विधि से भी पानी पूरे खेत में लगता है तथा अधिक संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है। पूरे फसल क्षेत्र में सिंचाई करने से खरपतवार अधिक पनपते हैं तथा खेत में लगातार नमी बनी रहने से फल सड़ कर खराब हो जाते हैं। खरबूजे में सिंचाई व जल प्रबंधन अनुसंधान कार्य के आधार पर बहाव विधियों में नाली विधि सिंचाई हेतु सर्वोत्तम एवं सरल है। नाली विधि में एक ओर जहाँ सिंचाई जल की भारी बचत होती है, वहीं दूसरी ओर बरसात के दिन यह नालियाँ जल संग्रहण का कार्य भी करती हैं। नाली विधि से सिंचाई करते समय इस बात का ध्यान अवश्य रखें कि पानी बेल फैलने वाले क्षेत्र में न फैले।

शुष्क व अर्ध शुष्क प्रदेश में जहाँ पर सिंचाई की पर्याप्त सुविधा है, वहाँ ग्रीष्म ऋतु में खरबूजा उत्पादन सम्भव है। पौधों की प्रारम्भिक अवस्था एवं फल जमाव होने तक 6 से

7 दिनों के अन्तराल पर निश्चित रूप से सिंचाई आवश्यक है। खरबूजे में सिंचाई नियमित अन्तराल पर जरूरी है विशेष रूप से जब फल आकार लेने लगे एवं पकने की स्थिति में पहुँचते हैं, इस समय सर्तकता बहुत ही आवश्यक है अन्यथा भारी मात्रा में फलों का फटाव हो सकता है। कई बार फसल पकने के समय भीषण गर्मी एवं धूल भरी आंधियों का प्रकोप हो जाता है। ऐसी स्थिति में सिंचाई प्रबन्धन कर फलों व फसल की सुरक्षा की जा सकती है।

सिंचाई जल की उपलब्धता सुनिश्चित होने पर बूंद–बूंद प्रणाली (drip irrigation) से खरबूजा उत्पादन के उत्साह जनक परिणाम मिले सकते हैं। इस विधि में न केवल सिंचाई जल की बचत होती है परन्तु फसल में अच्छी वृद्धि होने से विपणन योग्य फलों की उत्पादकता में भी बहुत बढ़ोतरी होती है। शुष्क क्षेत्र की जलवायु में खरबूजे की भरपूर पैदावार के लिए पाया गया है कि बूंद–बूंद प्रणालियों में एकल पाइप लाइनें (12–16 मिलीमीटर व्यास) जिन पर 50–50 सेमी दूरी के अन्तराल पर "आन लाइन ड्रीपर" उपयुक्त रहेंगे। फसल उत्पादन में बूंद–बूंद प्रणाली अपनाते हुए चयनित खेत में रेखांकन कर 2–2 मीटर की दूरी पर 12 से 16 मिलीमीटर व्यास की एकल पाइप लाईनें (laterals) को विधिवत बिछाएं, इनको खेत के मध्य में बिछी 50 से 75 मिलीमीटर व्यास की मुख्य पानी की आपूर्ति वाली लाइन से जोड़ देते हैं। लेट्रल पाइपों की अधिकतम लम्बाई 30 से 35 मीटर तक ही सीमित रखें तथा ध्यान रखें कि यह पाइपें पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर ही बिछी हों। खरबूजे की फसल के लिए लेट्रल पाइपों पर 50–50 सेमी की दूरी पर 4 से 6 लीटर प्रति घंटा क्षमता वाले ऑन लाइन ड्रिपर उपयुक्त रहेंगे।

खेत की तैयारी के समय जिन जगहों पर लेट्रल पाइप आ रहे हैं उसी के आस–पास 50–60 सेमी चौड़ाई की हल्की गहरी नालियाँ या कुण्ड बनाएं। इन नालियों में देशी खाद व उर्वरकों को अच्छी तरह से मिलाकर उनके मध्य में लेट्रल पाइपों को व्यवस्थित रखें। बुवाई पूर्व की हल्की सिंचाई कर प्रत्येक ऑन लाइन ड्रिपर वाले स्थान के आस–पास 3–4 बीजों की बुवाई करें। जब पौधे 15 से 18 दिनों के हो जाएं तब प्रत्येक स्थान पर एक या दो स्वथ्य पौधे रखकर शेष को निकाल दें। शुष्क क्षेत्रीय जलवायु को आधार बनाकर बूंद–बूंद प्रणाली से उगाई गई खरबूजे की फसल में तीन दिनों के अन्तराल पर सिंचाई कर जल बचत फसल उत्पादन लाभदायक रहता है। सीमित जल की स्थिति में फसल की प्रारम्भिक अवस्था के समय 2 से 3 घंटा तथा फलन आने पर 3 से 4 घंटा सिचांई करें। सम्भव हो तो यह कार्य रात्रि के समय करें।

निराई-गुड़ाई

खरबूजे के फलों की अच्छी गुणवत्ता एवं बेहतर उपज के लिए फसल में अच्छी

वानस्पतिक वृद्धि की आवश्यकता होती है। इसके लिए खेत का खरपतवारों से मुक्त रहना आवश्यक है। शुष्क क्षेत्र में रेतीली मिट्टी वर्षा व सिचांई के बाद कठोर परत के रूप में जम जाती है जो कि बीजों के अंकुरण एवं नवोदित पौधों की प्रारम्भिक वृद्धि में बाधक होती है। इसलिए बीज अंकुरण के बाद से ही लगातार हल्की–हल्की निराई–गुड़ाई करते रहना चाहिए। नाली विधि से बोई गई फसल में प्रत्येक सिंचाई के बाद फसल की प्रारम्भिक अवस्था में 3–4 निराई–गुड़ाई अवश्य करें। बेल फैलने वाले क्षेत्र को 1–2 बार निराई–गुड़ाई कर खरपतवारों से मुक्त रखें। जब बेलें अच्छा आकार ले लेती हैं तब इस क्षेत्र में निराई–गुड़ाई नहीं करनी चाहिए। अच्छी पैदावार के लिए बुवाई की गयी नालियों को सदैव खरपतवारों से मुक्त रखा जाना चाहिए। खेत में यदि खरपतवारों की समस्या ज्यादा है एवं यह कार्य निराई–गुड़ाई से करना मुश्किल हो तब एक किलोग्राम पेन्ड़ीमिथोलिन (3.3 मिलीलीटर स्टाम्प प्रति लीटर पानी की दर) के 1000 लीटर पानी के घोल का एक हेक्टेयर क्षेत्रफल में बुवाई के 1–2 दिन बाद छिड़काव किया जा सकता है। खरबूजे की नाली या बूंद–बूंद प्रणाली अपनाकर व्यवस्थित खेती में बेल फैलने वाले क्षेत्र में खरपतवार नियंत्रण हेतु बुवाई के 15 से 40 दिनों के मध्य 1–2 बार पावर टिलर से हल्की जुताई द्वारा भी खरपतवारों पर नियंत्रण सम्भव है।

नमी संरक्षण

काश्तकारी जागरुकता, सिंचाई के संसाधनों में विकास तथा बाजार में खरबूजे की अच्छी मांग के कारण शुष्क व अर्ध शुष्क प्रदेशों में किसान इसे ग्रीष्म ऋतु की एक प्रमुख फसल के रूप में उगाने लगे हैं। मरु प्रदेश में यहां की कठोर परिस्थितियाँ विशेषकर अत्यधिक तापमान व वाष्पीकरण तथा गर्म हवाऐं खरबूजा उत्पादन में बाधक रहती हैं। खरबूजे की कई किस्में इस जलवायु में न तो अच्छी बढ़वार लेती हैं और न ही उनसे विपणन योग्य उपज मिलती है। अधिकांश फल परिपक्व होने से पहले ही फट जाते हैं तथा फलों का ऊपरी भाग झुलस भी जाता है। रेतीली बालू मिट्टी में पानी रोकने की क्षमता नहीं होती है इस कारण पौधों में हमेशा पानी की कमी बनी रहती है।

खेत में फसल उत्पादन के लिए उचित वातावरण बनाने के साथ ही नमी संग्रहण एवं संरक्षण करने की आवश्यकता भी है। इस कार्य के लिए खेत की वर्षा पूर्व की जुताई, खेत में नाली या गहरे कुण्ड बनाकर खेती, समय–समय पर फसल में निराई–गुड़ाई, खरपतवार रहित खेत, पलवार बिछाकर नमी संरक्षण एवं वैज्ञानिक ढंग से सिंचाई प्रबन्धन की बातों पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। वर्षा ऋतु के आगमन के पूर्व जून के अंतिम सप्ताह तथा सर्दियों में दिसम्बर में खेत की गहरी जुताई कर वर्षा जल संग्रहण किया जाना चाहिए। खेत में नालियाँ अथवा गहरे कुण्ड बनाकर अधिक से अधिक वर्षा जल का संग्रहण एवं

संरक्षण किया जा सकता है। इस कार्य से खेत में नमी लम्बे समय तक बनी रहती है। नाली अथवा कुण्ड विधि से बुवाई करने से बरसात के दिन इन नालियों अथवा कुण्डों में पानी संग्रहण होता है जोकि बोई गई फसल के लिए लाभदायक रहता है। निराई–गुड़ाई करने और खेत को खरपतवारों से मुक्त रखने से भूमि की ऊपरी सतह का सम्पर्क निचली सतह से टूट जाता है। इससे खेत का पानी वाष्पित होने से रुक जाता है। लगातार पौधों की जड़ों के आस–पास गुड़ाई करते रहने से हवा का संचालन सुचारू रूप से रहता है जिससे पौधों का विकास अच्छा होता है। खेत में बेल फैलने वाली जगहों में स्थानीय घास–फूस से पलवार (mulch) करने से नमी तो सुरक्षित रहती है साथ ही जमीन का तापमान भी कम हो जाता है जिससे पौधों में अधिक फल जमाव एवं नव विकसित फलों का विकास अच्छा रहता है। पलवार से रेत के गर्म कणों को छोटे मुलायम फलों तक जाने से रोका जा सकता है जिससे फल विकास एवं उत्पादन पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। इनके अलावा नाली अथवा बूंद–बूंद प्रणाली अपनाकर एक नियमित अंतराल पर सिंचाई करते रहने से गुणवत्ता युक्त अच्छा फल उत्पादन होता है। केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर में खरबूजे की फसल में एकीकृत नमी संरक्षण एवं सिंचाई प्रबन्धन द्वारा 40 से 60 प्रतिशत तक अधिक फल उपज प्राप्त की है। परिणामतः विपणन योग्य गुणवत्ता वाले फलों की संख्या में अत्यधिक बढोतरी हुई।

फसल उत्पाद प्रबन्धन

खरबूजे में फलों की तुड़ाई उनका उपयोग एवं विपणन बाजार पर निर्भर करता है। मध्यम से पूर्ण विकसित फलों को सब्जी के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। अतः स्थानीय या दूर के बाजार में बेचने के लिए 500–800 ग्राम वजनी कच्चे फलों को तोड़ लिया जाना चाहिए। मुख्यतः व्यवसाय के लिए खरबूजे के पूर्ण विकसित फलों को पकने पर ही तोड़ा जाता है। इस अवस्था में उनमें अच्छी गुणवत्ता, अधिकतम मिठास एवं खुशबू विकसित हो जाती है। आवश्यकता से अधिक पकने से फलों में गुणवत्ता कम हो जाती है। पके फलों की तुड़ाई पर विशेष ध्यान रखना जरूरी है जो कि किस्मों पर भी निर्भर करती है। खरबूजे की खेत में उचित परिपक्वता की जाँच निम्न प्रकार से की जा सकती है।

1. पूर्ण पक जाने पर फल लता के डण्ठल से आसानी से अलग हो जाते हैं जिसे 'फूल स्लिप स्टेज' कहा जाता है। स्थानीय बाजार के लिए इस तरह के फलों को तोड़ना उचित माना जाता है। दूरस्थ बाजार के लिए 'फूल स्लिप स्टेज' आने के दो–तीन दिन पहले फल तोड़े जाने चाहिए।
2. फल का अंतिम छोर पहले पकना प्रारम्भ करता है जिससे फल का रंग बदल जाता है और छिलका मुलायम सा प्रतीत होता है।

3. परिपक्व फलों से एक मन भावक गंध आती है जिसके आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि फल पकने लगे हैं।
4. पके फलों में एक विशेष चमक होती है जिससे यह अनुमान लगाया जाता है कि फल पकने लगे हैं।
5. फसल पकने पर फलों की घुलनशील शर्करा का अंश कच्चे फल की तुलना में काफी अधिक बढ़ जाता है। इस तरह मिठास के आधार पर भी फलों की परिपक्वता का सही अनुमान लगाया जा सकता है।

अच्छी गुणवत्ता युक्त उपज के लिए पौधों में फलों की छंटाई भी करनी चाहिए। एक पौधे पर 5–6 फलों को ही पूर्ण विकसित होने देना चाहिए। पौधे की अग्रिम शाखाओं पर लगे तथा फटे फलों को समय–समय पर तोड़ कर हटा देना चाहिए। खरबूजे के पके फलों को सामान्य तापमान में छायादार स्थान पर 2–3 दिन तक सुरक्षित रखा जा सकता है। शीत भण्डार गृहों में 90 प्रतिशत आर्द्रता रखकर खरबूजे के फलों को दो सप्ताह तक भण्डारित किया जा सकता है।

खरबूजे की फसल से अधिक आय प्राप्त करने के लिए फलों को खेत स्तर पर ही वर्गीकृत कर विक्रय के लिए ले जाना चाहिए। विपणन योग्य फलों को किस्म, आकार व वजन के अनुरूप 2–3 वर्गों में बाँट देना चाहिए। बदरंग, बदरूप, कटे–फटे एवं छोटे फलों को छंटनी द्वारा एकत्रित कर उनसे बीज निकालते रहना चाहिए क्योंकि खरबूजे के बीजों का व्यावसायिक महत्व भी होता है। किस्म, बुवाई का समय एवं विधि तथा फसल उत्पादन प्रबन्धन पर उपज निर्भर करती है। साधारणतयः उन्नत फसल उत्पादन तकनीकी द्वारा 175–220 क्विंटल प्रति हेक्टेयर पैदावार प्राप्त की जा सकती है। राजस्थान के शुष्क व अर्ध शुष्क क्षेत्रों की नदियों के पाटों एवं सूखे तालाबों तथा ग्रीष्मकालीन सिचिंत खेती हेतु बुवाई दिसम्बर–मार्च तक अलग–अलग फसल उत्पादन व्यवस्थाओं के तहत की जा सकती है। फलस्वरूप मार्च के अंत से लेकर जुलाई के मध्य तक एक लम्बी अवधि तक बाजार में फल की उपलब्धता बनी रह सकती है।

फसल सुरक्षा प्रबन्धन

फसल में कम से कम मात्रा में नुकसान रखना ही उत्पादन में वृद्धि करने की एक उत्तम विधि हो सकती है। फसल में क्षति पहुँचाने वाली विभिन्न तरह की बीमारियों एवं कीटों के अलावा अचानक होने वाली वातावरण परिस्थितियाँ भी हैं जो फसल पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं। अतः भरपूर पैदावार के लिए इन सभी का समुचित, सुरक्षित एवं समन्वित प्रबन्धन जरूरी है। फसल प्रबन्धन की ऐसी व्यवस्था हो जिसमें सुरक्षा की मिली–जुली प्रणालियाँ हों जिससे संतुलित एवं सुरक्षित बचाव व नियंत्रण हो सके। फसल उत्पादन

प्रक्षेत्र में उन्नत कृषि क्रियाऐं एवं तकनीकों का इस तरह समावेश हो कि फसल के लिए खेत में ऐसी वातावरण व्यवस्था पैदा हो जाए जिससे विपरीत परिस्थितियों, रोग तथा कीड़ों की स्थिति में फसल पर कम से कम प्रभाव पड़े एवं समय पर आसानी से नियंत्रण भी किया जा सके।

फसल प्रबन्धन एक ऐसा घटक है जिसके अन्तर्गत उन सभी उन्नत कृषि तकनीकों का क्षेत्रीय जलवायु के आधार पर समावेश होता है जिससे फसल उत्पादन हेतु खेत में उचित वातावरण विकसित किया जाता है जो फसलों को विपरीत परिस्थितियों वाली जलवायु, बीमारियाँ एवं कीड़ों से बचाव करता है। इस प्रबन्धन योजना में प्रक्षेत्र चयन के अलावा समय–समय पर खेतों की सफाई, आस–पास के खेतों की भी सफाई, फसल बुवाई के पूर्व खेतों की गहरी जुताई एवं तैयारी, खेत व आस–पास से इकट्ठा किया गया रोग ग्रस्त व अन्य कचरे को नष्ट करना, फसल चक्र अपनाना आदि प्रमुख हैं। खेत में उचित वातावरण एवं समुचित संसाधनों का सदुपयोग हेतु क्षेत्रीय जलवायु को आधार बनाकर सोची समझी बागवानी आधारित कृषि उत्पादन प्रणालियों को व्यवस्थित ढंग से लागू करना जरूरी है।

सुरक्षित उत्पादन प्रणालियों के अन्तर्गत प्रक्षेत्र/खेत की जुताई से लेकर फसल कटाई तक व सभी क्रियाऐं जैसे स्वस्थ एवं उपचारित बीजों का प्रयोग, व्यवस्थित बुवाई, पौधे से पौधे की दूरियां एवं पौधे की प्रति इकाई संख्या, संतुलित पोषण एवं मृदा का स्वास्थ्य संरक्षण, सिंचाई जल व नमी प्रबन्धन, लाभकारी जीवों व प्राणियों के लिए सुरक्षित खेती हेतु जैविक व रसायनिक तकनीकों का समन्वय इत्यादि शामिल है। व्यावसायिक स्तर पर खेती की योजना के अन्तर्गत जहाँ एक के बाद एक फसल उगाई जाती है वहाँ केवल कृषि एवं जैविक क्रियाओं से कीड़ों एवं रोगों का प्रबन्धन नहीं कर सकते हैं। प्रक्षेत्र में रसायनिक दवाओं का फसल की वानस्पतिक वृद्धि, सम्भावित कीड़े व बीमारियों के होने का अंदेशा लगाकर पहले से ही इनसे बचाव हेतु उपाय करना चाहिए।

प्रतिकूल जलवायु में फसल सुरक्षा

शुष्क व अर्ध शुष्क क्षेत्र की जलवायु में खरबूजा एक महत्वपूर्ण कद्दू वर्गीय फसल है। इसकी सफल खेती के लिए यहाँ की वातावरणीय रुकावटें जैसे लम्बी समय अवधि तक अत्यधिक तापमान, गर्म लू के थपेड़े, अत्यधिक वाष्पीकरण, धूल भरी आंधियाँ आदि के प्रकोप से फसल को बचाने हेतु सुरक्षा कार्य जरूरी है। तेज आंधियाँ आने से खेत की बालू मिट्टी एक स्थान से दूसरे स्थान पर जमा हो जाने से दोनों ही स्थानों की उर्वरा शक्ति कमजोर पड़ जाती है जिसका प्रभाव फसल पर पड़ता है।

रेत के बारीख गर्म कण कोमल पत्तियों, फूलों व नव विकसित फलों को काफी नुकसान पहुँचाते हैं। वातावरण में लगातार अत्यधिक तापमान एवं कम आर्द्रता से भूमि व पौधों से

अत्यधिक मात्रा में पानी वाष्पित होता है एवं फसल पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। अत्यधिक तापमान रहने से फलों का जमाव कम होता है एवं छोटे फल सूख कर झड़ भी जाते हैं। मरु प्रदेश की इन विपरीत परिस्थितियों में फलों में अत्यधिक फटाव होता है जिससे प्रति पौधा विपणन योग्य फलों की संख्या में भारी गिरावट आ जाती है। इस प्रतिकूल जलवायु वाली स्थिति में फसल सुरक्षा हेतु खेत/प्रक्षेत्र में अनुकूल वातावरण तैयार करना चाहिए।

खेत में वर्षा जल संग्रहण एवं नमी संरक्षण क्रियाओं पर विशेष ध्यान रखकर सिंचाई प्रबन्धन तरीकों को उचित रूप से अपनाना चाहिए। पौधों में उचित वानस्पतिक विकास, फल जमाव एवं गुणवत्ता युक्त उत्पादन हेतु प्रक्षेत्र प्रबन्धन अपनाना आवश्यक है। मरु क्षेत्र में इस कार्य के लिए ष्बागवानी आधारित उत्पादन प्रक्षेत्र प्रबन्धनष् को सुनियोजित ढंग से अपनाना होगा। इस फसल उत्पादन व्यवस्था में निम्नलिखित बिन्दुओं में वैज्ञानिक तकनीकों का समावेश क्षेत्रीय जलवायु के अनुरूप लाभप्रद सिद्ध हो सकता है।

1. प्रक्षेत्र/खेत के चारों ओर स्थानीय प्रजाति के बहुउपयोगी पेड़–पौधों व झाड़ियों का समावेश कर वायु रोधी पट्टिकाओं का सुनियोजित ढंग से विकास करने से फसल उत्पादन सम्बन्धी अनुकूल वातावरण तैयार किया जा सकता है। इसमें खेत के चारों ओर बाड़ी बंदी या तार बंदी भी एक महत्वपूर्ण पहलु है।
2. प्रक्षेत्र में उपयुक्त खेत का चुनाव एवं बागवानी में उचित फसल उत्पादन प्रणालियों को अपनाना।
3. वर्षा जल संग्रहण नमी संरक्षण तथा सिंचाई प्रबन्धन पर विशेष व्यवस्था एवं मृदा संरक्षण एवं स्वास्थ्य हेतु उपयुक्त फसलों का चुनाव, संतुलित खाद व उर्वरकों का प्रयोग तथा फसलों के मध्य की भूमि पर पलवार के रूप में स्थानीय घास–फूस को प्राथमिकता देना।
4. वैज्ञानिक तकनीकों को अपनाकर फसल उत्पादन एवं उत्पाद प्रबन्धन कार्य करना।
5. प्रतिकूल जलवायु के कारकों, जंगली जानवरों, पक्षियों तथा कीट व बीमारियों से बचाव हेतु समेकित फसल सुरक्षा प्रबन्धन को अपनाना।

कीट एवं नियंत्रण

खरबूजे की फसल में को भी कुष्माण्ड कुल की सब्जियों को हानि पहुँचाने वाले कीट या नाशीजीव (insect pests) ही प्रभावित करते हैं। इस फसल को हानि पहुँचाने वालों में कद्दू का लाल भृंग, ऐपीलेकना भृंग या हाड़ा बिटल, माहू या एफिड फल मक्खी, बरुथी छिछड़ी माईट्स आदि प्रमुख है। इनके प्रकोप से फसल को बचाने के लिए समय पर नियंत्रण करना बहुत आवश्यक है।

कद्दू का लाल भृंग (red pumpkin beetle), (*Rhaphidopalpa foveicollis* Lucas)

यह एक बहु भक्षी भृंग (भंवरा) है। इसकी सुंडी मिट्टी के अंदर घुस कर पौधे की जड़ों तथा भूमि पर स्पर्श करने वाले समस्त प्रकार के बागों को हानि पहुँचाती है। प्रौढ़ भृंग पत्तियों पर अनियमित आकार के असंख्य छिद्र बना देते हैं, तथा फूलों व फलों को भी क्षति पहुँचाते हैं। भृंग बीजों के अंकुरण के बाद पौधों की प्रारम्भिक अवस्था की पत्तियों को खाकर छलनी कर देते हैं। अधिक प्रकोप होने पर पत्तियों में शिराऐं ही दिखाई देती हैं एवं बीच वाला भाग पूरा खा जाते हैं। छोटे पौधे तो कई बार पत्तियाँ रहित भी हो जाते हैं। बीज अंकुरण से 18–20 दिनों तक के छोटे पौधों पर अधिक प्रकोप होने पर रातों–रात पूरी फसल नष्ट हो जाती है।

प्रौढ़ कीट लाल रंग के चमकीले तथा 6 से 9 मिलीमीटर लम्बे होते हैं। लटें पीले क्रीम रंग की तथा 10 से 14 मिलीमीटर लम्बी होती हैं। इनका सिर भूरे रंग का होता है। यह कीट सर्द ऋतु में कूड़े करकट के ढेर, सूखी लताओं एवं खरपतवारों में छिपा रहता है तथा मार्च से अक्टूबर तक सक्रिय रहता है।

ऐपीलेकना भृंग (Hadda beetle), (*Epilachna vigintioctopuntate* Fabr.)

यह भी एक बहुभक्षी कीट है जो लगभग सभी सब्जियों वाली फसल में क्षति पहुँचाता है। इसके भृंग पीले–भूरे रंग के, गोलाकार तथा सशक्त शरीर वाले होते हैं। वयस्क भृंग पत्तियों की बाहरी त्वचा एवं पर्णहरित को खाते हैं। अंकुरण के बाद से ही इनका प्रकोप दिखाई देना प्रारम्भ हो जाता है। भृंग पत्तियों के नीचे चिपके रहते हैं और उन्हें सुखा कर जाल सा बना देते हैं। फसल की प्रारम्भिक अवस्था में आक्रमण तेज होने पर शीघ्र ही फसल नष्ट हो जाती है।

नियंत्रण

1. सब्जियों की सघन खेती वाले प्रक्षेत्र में उचित फसल चक्र अपनाएं। खेत के आस–पास की जमीन साफ व खरपतवारों से मुक्त रखें। मेड़ बंदी के ऊपर अथवा बाड़ी बंदी के पौधों पर खेत की तैयारी के समय सम्भाल करें तथा उन पर कीटनाशी दवा का छिड़काव भी करें।
2. ग्रीष्म ऋतु में मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई करके खेत को सप्ताह भर के लिए खुला छोड़ें जिससे तेज धूप से अण्डे नष्ट हो जाएं।
3. फसल समाप्त होते ही उसके अवशेषों को खेत में ही इकट्ठा कर जलाने के बाद खेत की गहरी जुताई कर खुला छोड़ देना चाहिए। कीटों से क्षतिग्रस्त व सड़े फलों को खेत में से समय–समय पर निकालते रहें एवं उनको 3–4 फीट गहरे

गड्ढे में दबाकर गड्ढे को जमीन के बराबर मिट्टी से भर दें।

4. प्रातःकाल सूर्योदय तक कद्दू का लाल भृंग व ऐपीलेकना भृंग निष्क्रिय रहते हैं। इस समय प्रौढ़ भृंगों को एकत्रित कर केरोसीन मिश्रित पानी में डाल कर नष्ट किया जा सकता है। प्रातःकाल मौसम ठण्डा रहने से पौधों में अच्छी नमी रहती है। इन कीटों पर प्रभावी नियंत्रण हेतु 50 किलोग्राम लकड़ी की राख में एक किलोग्राम मिथाइल पेराथियान (2 प्रतिशत) मिलाकर सूर्योदय से पूर्व फसल पर अच्छी तरह भुरकाव करना चाहिए। इस मिश्रण को टाट की थैली में भरकर छोटे पौधों पर भुरकाव करने से भृंग पौधों पर नहीं बैठते हैं।
5. जिन क्षेत्रों में इन भृंगों का प्रकोप प्रति वर्ष होता है वहाँ बुवाई के समय कार्बोयूरान 3–जी 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से भूमि में डालें। लाल या ऐपीलेकना भृंगों का प्रकोप ज्यादा होने पर इनकों नियंत्रण करने के लिए 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से 5 प्रतिशत मैलाथियान या कार्बारिल या 2 प्रतिशत मिथाइल पैराथियान चूर्ण का राख के साथ भुरकाव करें। भुरकाव प्रातःकाल से ही करें क्योंकि नमी के कारण कीटनाशी पत्तियों की सतह पर चिपक जाते हैं जिससे वयस्क भृंग नष्ट हो जाते हैं। फसल में भृंगों पर प्रभावी नियंत्रण हेतु मैलाथियान 50 ई. सी. (1 मि.ली.) या डाइमिथोएट 30 ई. सी. (1 मि.ली.) या कार्बारिल 50 डब्ल्यू. पी. (2 ग्राम) दवा को प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव 12–15 दिनों के अंतराल पर करते रहना चाहिए। एक हेक्टेयर फसल में छिड़काव हेतु 150–500 लीटर घोल पर्याप्त रहता है। घोल की मात्रा फसल की आयु व कीट के प्रकोप पर भी निर्भर करती है।

फल मक्खी (Fruit fly), (*Dacus cucurbitae Coquillett*)

फल मक्खी कुष्माण्ड कुल की फसलों में विशेषकर तरबूज, टिण्डा, करेला, तुरई तथा ककड़ी के लिए सबसे अधिक हानिकारक होती है। परन्तु यह खरबूजे की फसल को भी नुकसान पहुँचाती है। मादा कीट कोमल फलों में अण्डरोपक गड़ाकर छिलके के नीचे अण्डे देती है। अण्डों से गिड़ार या इल्ली निकल कर गूदे को खाती है जिससे फल सड़ने लगते हैं। पूर्ण विकसित गिड़ार फल से बाहर आकर प्यूपे में परिवर्तित हो जाती है। क्षतिग्रस्त फल पर अण्डा दिए गए स्थान से तरल पदार्थ निकलता रहता है जो बाद में कठोर बन जाता है। क्षतिग्रस्त फल टेढ़े–मेढ़े हो जाते हैं और बहुत छोटे फल सूख कर झड़ जाते हैं। कभी–कभी करेले जैसी फसल में फल मक्खी का आक्रमण 80 प्रतिशत तक हो जाता है जिससे उत्पादन पर भारी प्रभाव पड़ता है।

इस कीट के अण्डे सफेद, बेलनाकार व थोड़े से वक्रित होते हैं तथा इसके प्यूपे

भूरे रंग के होते हैं। इल्ली मैले सफेद रंग की होती है। प्रौढ़ मक्खी 5–6 मि.मी. लम्बी, लाल–भूरे या हल्के पीले रंग की होती है। इसके सिर पर काले या सफेद बिन्दु होते हैं। यह कीट फरवरी–अक्टूबर तक सक्रिय रहता है किन्तु वर्षा ऋतु में सक्रियता बढ़ जाती है। दिन में सूर्य की गर्मी से बचने के लिए मक्खियाँ पत्तों के नीचे छुप जाती हैं।

नियंत्रण

1. गिरे हुए तथा कीट ग्रस्त फलों को एकत्रित करके गहरे गड्ढों में गाड़ देना चाहिए। कीट ग्रस्त फसल के अवशेषों को इकट्ठा कर जला देना चाहिए।
2. फल मक्खी के नियंत्रण के लिए फूल व फल बनने के समय मैलाथियान 50 ई.सी. या डाईमिथोएट 30 ई. सी. दवा का एक मिलीलीटर प्रति पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें। प्रकोप अधिक होने पर 8–10 दिन बाद एक और छिड़काव करें। फल मक्खी की रोकथाम के लिए एक किलो गुड़ या शक्कर को 10 लीटर पानी व 20 मि.ली. मैलाथियान के साथ मिलाकर घोल तैयार करके पौधों पर छिड़काव करें। इससे प्रौढ़ कीट आकर्षित होते हैं तथा दवाई छिड़के पौधों के भागों को खाने से मर जाते हैं। इस घोल की 50–100 मि.ली. मात्रा को प्लास्टिक के बर्तनों में भरकर खेत में कई स्थानों पर रखा जाए तो वयस्क कीट प्रलोभन में आकर इनमें गिरकर मर जाते हैं।

छिछड़ी या बरुथी माईट्स (Mites), (*Tetranychus* spp.)

छिछड़ी या बरुथी माईट्स का प्रकोप कुष्माण्ड कुल की फसलें जैसे टिण्डा, तरबूज, लौकी के साथ–साथ खरबूजे में भी देखा गया है। शुष्क प्रदेश में यह मुख्यतः ग्रीष्म ऋतु में अधिक नुकसानदायक है, परन्तु वर्षाकालीन फसलों में भी इनका आक्रमण देखा गया है। बरुथी का आक्रमण पत्तियों की निचली सतहों पर होता है, जहाँ यह शिराओं के पास अण्डे देती हैं। वयस्क कीट पत्तियों का रस चूसते हैं तथा अपने चारों ओर जाला तैयार कर देते हैं। अत्यधिक प्रकोप की अवस्था में पत्तियाँ चितकबरी होकर चमकीली पीली हो जाती हैं। आंधी के दिनों में रेत के बारीक कण इन पत्तियों पर जमा हो जाते हैं, जिससे पौधों की वृद्धि एवं उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। जो किसान फव्वारा पद्धति से फसलों की सिंचाई करते हैं और उसी दिन अगर धूल भरी हल्की आंधी आ जाए तो पौधों पर मिट्टी पर बारीक कणों के जमाव से इस कीट का आक्रमण बढ़ जाता है। यदि फसल की प्रारम्भिक अवस्था में छिछड़ी माईट का आक्रमण हो जाता है तो फसल पूरी तरह से चौपट हो सकती है।

नियंत्रण

छिछड़ी के नियंत्रण में साधारण रसायनिक दवाओं का प्रभाव कम पड़ता है एवं इसका नियंत्रण करना बड़ा कठिन है। इसके लिए फसल पर पूरी निगरानी रखें तथा जब भी किसी पौधे में जाले बनता दिखाई दे तो तुरन्त बचाव हेतु योजना बनाएं। प्रारम्भिक आक्रमण वाली स्थिति में फसल पर मेटास्टिास्क 25 ई. सी. की 1.5 मिलीलीटर दवा प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। छिड़काव पूरे पौधों पर अच्छी तरह करना चाहिए। कीट का ज्यादा प्रकोप होने की स्थिति में कोलेनल–सस (डाइकोफाल 18.5 ई. सी.) 2.5 मि.ली./लीटर पानी की दर से घोल कर पत्तियों की ऊपरी व निचली दोनों सतहों पर छिड़काव करें।

चेपा, हरा तेला, मोयला या माहू (Aphids)

कुष्माण्ड कुल की लगभग सभी फसलों पर इन कीटों का प्रकोप होता है। इसके अर्भक तथा वयस्क कीट पौधे के नर्म भागों से रस चूसकर क्षति पहुँचाते हैं। इन कीटों का अत्यधिक प्रकोप नव विकसित बेल तथा नए बने छोटे फलों पर अधिक होता है। अत्यधिक प्रकोप से पत्तियाँ सिकुड़ जाती हैं तथा फलों की बढ़वार रुक जाती है। कीट के प्रकोप से पत्तियों तथा तने पर चिपचिपा पदार्थ जमा हो जाता है जिससे पौधों में प्रकाश संश्लेषण भी बाधित होता है। यह कीट कुष्माण्ड कुल की फसलों में विभिन्न विषाणु रोगों को प्राकृतिक संचरण करने में भी सहायक होता है। विषाणु रोग द्वारा संक्रमण होने से फसल में बड़ी हानि हो जाती है। वयस्क कीट गहरे पीले, हरे व बाद में काले रंग के हो जाते हैं। इनका आकार 2.5 मि.मी. तक होता है। सिर छोटा तथा चमकीला होता है।

नियंत्रण

प्रारम्भिक अवस्था में पौधे के कीट ग्रस्त भाग को काट कर कीट सहित जला देना चाहिए। इससे कीट के प्रसार को रोकने में मदद मिलती है। इन छोटे रस चूसने वाले कीटों का उचित समय पर नियंत्रण बहुत ही जरूरी है। कीट का प्रकोप बढ़ने पर मैलाथियान (1 मि.ली.) या मैटासिस्टास्क (1 मि.ली.) या रोगोर (1 मि.ली.) या फास्फोमिड़ोन 85 एस एल (0.04 मि.ली.) दवा प्रति लीटर पानी में घोलकर एक नियमित अंतराल पर छिड़काव करके इनका नियंत्रण किया जाना चाहिए।

दीपक (Termite)

शुष्क क्षेत्रों में दीमक का प्रकोप अधिक रहता है तथा इसके प्रकोप से पौधे सूख कर नष्ट हो जाते हैं।

नियंत्रण

1. दीमक का प्रकोप कम करने के लिए खेत में से सूखे डंठल आदि इकट्ठे करके जला दें। कच्ची खाद का प्रयोग न करें।
2. बुवाई पूर्व 4 प्रतिशत एन्डोसल्फान या 1.5 प्रतिशत क्यूनालफॉस चूर्ण 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से भूमि में मिला दें।
3. खड़ी फसल में प्रकोप होने पर क्लोरोपायरीफॉस 20 ई. सी. 4 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से सिंचाई के साथ देवें।

सफेद लट (White grub)

वर्षा ऋतु में लट का प्रकोप अधिक होता है। इस कीट की भृंग तथा तथा लटें दोनों ही फसल को नुकसान पहुँचाती हैं। भृंग पत्ते खाकर नष्ट करते हैं तथा लटें भूमि में जड़ों को काटकर नुकसान पहुँचाती हैं।

नियंत्रण

1. भृंग मानसून या मानसून पूर्व की प्रथम वर्षा उपरान्त भूमि से निकल कर परपोषी वृक्षों (खेजड़ी,बेर,नीम,सेंजना) आदि की पत्तियाँ खाते हैं। इन परपोषी वृक्षों पर वर्षा के तुरन्त बाद कार्बारिल 50 डब्ल्यू. पी. 4 ग्राम या मानोक्रोटोफास 36 एस.एल. 1.5 मिलीलीटर का एक लीटर पानी की दर से घोल के छिड़काव द्वारा फसल को इनके प्रकोप से बचाया जा सकता है।
2. लट के नियंत्रण हेतु बुवाई की गयी नालियों में 10 प्रतिशत फोरेट कण 25 किलो प्रति हेक्टेयर की दर से मिलाएं।
3. खड़ी फसल में लट का नुकसान देखते ही क्लोरोपायरीफॉस 20 ई. सी. या क्लूनालफॉस 25 ई. सी. को 4 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से सिंचाई के साथ दें। सिंचाई के साथ दवाई देने के लिए मिट्टी के घड़े के पेंदे में एक सुराख कर उसमें कपड़े की बत्ती फंसा दें। इस घड़े में कीटनाशी की आवश्यक मात्रा डालकर उसे एक तिपाई पर सिंचाई की मुख्य नाली पर रखें। कपड़े की डोर को ऊपर–नीचे कर के कीटनाशी के घोल के रिसाव की मात्रा को इस तरह नियंत्रित करें कि कीटनाशी बूंद–बूंद कर नाली में गिरता रहे तथा पानी के साथ पूरे खेत में फैल जाए।

अकीट नाशीजीव (Non insect pests)

कुष्माण्ड कुल की फसलों में कीड़ों के अतिरिक्त कुछ जीव–जंतु भी हैं जो फसलों को

हानि पहुँचाते हैं। इनमें से जंगली छिपकली, गिलहरी, चूहा, पक्षी (तीतर, मोर, तोता, बुलबुल) नील गाय इत्यादि। बुवाई के पश्चात जंगली छिपकली, गिलहरी एवं तीतर बीजों एवं नवांकुर पौधों को भारी क्षति पहुँचाते हैं जिससे कई बार फसल की दुबारा बुवाई करनी पड़ जाती है। मरु प्रदेश में खेत प्रायः खुले रहते हैं और उनके चारों ओर किसान बाड़ बंदी या तार बंदी नहीं कर पाता है जिससे नील गायों द्वारा फसल को भारी क्षति होती है। कई बार फलों को पक्षी एवं चूहों द्वारा भी नुकसान पहुँचाया जाता है जिससे फल विपणन योग्य नहीं रह पाते हैं।

नियंत्रण

खेत के चारों ओर तार बंदी या बाड़ी बंदी कर फसल को सुरक्षा प्रदान की जा सकती है। फसल बुवाई की प्रारम्भिक अवस्था में एवं फल बनने के समय सुबह शाम रखवाली करने से फसल को बचाया जा सकता है। रात्रि के समय खेत की निगरानी कर फसल को नील गाय के नुकसान से बचाया जा सकता है।

रोग एवं नियंत्रण

कुष्माण्ड कुल की फसलों में लगने वाले प्रमुख रोग जैसे छाछिया या चूर्णिल आसिता (powdery mildew), तुलासिता या मृदुरोमिल आसिता (downy mildew), श्याम वर्ण या रूक्ष रोग (anthracnose), पर्णचित्ती (leaf spot), अंगमारी या झुलसा रोग (blight), जड़ विगलन या म्लानि (wilt), फल विगलन (fruit rot) जैसी फफूंदी रोग (fungal disease), जीवाण्विक (bactrial disease), वीषाणु रोग (viral disease) एवं सूत्रकृमि जनित रोग (nematodes) हानि पहुँचाते हैं इनमें से कुछ रोग खरबूजे की फसल को भी हानि पहुँचा सकते हैं इसलिए समय पर रोग नियंत्रण की आवश्यकता रहती है।

छाछिया

इस रोग का प्रकोप कुष्माण्ड कुल की प्रायः सभी फसलों पर होता है। रोग से प्रभावित पौधों पर फल कम व आकार में छोटे लगते हैं। रोग के लक्षण पौधे के सभी हरे भागों पर देखे जा सकते हैं। प्रारम्भ में पत्तियों पर सफेद व मटमैले रंग के छोटे–छोटे धब्बे दिखाई देते हैं, बाद में इनका रंग भूरा–लाल हो कर इन पर सफेद चूर्ण जमा हो जाता है। रोग की तीव्र अवस्था में बेल के सम्पूर्ण हरे भाग जैसे पत्तियाँ पर्णवृंत, तंतु, टहनी, पुष्प वृंत आदि पर सफेद चूर्ण फैल जाता है। कभी–कभी फलों पर भी कवक वृद्धि देखी जा सकती है। रोग का प्रकोप उच्च आर्द्रता में होता है तथा 26 से 28 डिग्री सेल्सियस तापमान में इसमें वृद्धि हो जाती है।

नियंत्रण

खेत में स्वच्छता रखना ही इस रोग से बचाव का प्रमुख उपाय है। इसके लिए रोग ग्रस्त फसल के अवशेषों को इकट्ठा करके खेत में ही जला देना चाहिए। खेत तथा उसके आस–पास कुष्माण्ड कुल के अवांछनीय पौधों व अन्य खरपतवारों को नहीं पनपने दें। पहले से उगी हुई कुष्माण्ड कुल की फसल के पास नई फसल नहीं लगाएं तथा कम से कम दो वर्ष का फसल चक्र अपनाएं। रोग के लक्षण दिखाई देते ही कवकनाशी रसायन जैसे केराथेन ई. सी. या केलेक्जीन या कार्बेन्डेजिम दवा का एक मि.ली. प्रति लीटर पानी के घोल का छिड़काव करें। रोग के लक्षणों की स्थिति को देखकर आवश्यकता पड़ने पर उपचार 10 दिनों बाद पुनः करें। गंधक का प्रयोग हानिकारक है।

मृदुरोमिल आसिता

इस रोग से पत्तियों की ऊपरी सतह पर हरे–पीले रंग के धब्बे बन जाते हैं। जिसके फलस्वरूप पत्तियों पर चितकबरापन दिखाई देता है जो मोजेक का आभास कराता है। धीरे–धीरे ऊपरी सतह पर धब्बों का रंग पीला हो जाता है तथा इनकी आकृति पत्तियों की शिराओं से सीमित होकर कोणीय हो जाती है। वातावरण में अधिक आर्द्रता बनी रहे तो पत्तियों की निचली सतह पर धब्बों के ठीक नीचे रोग जनक फफूंद बढ जाने के कारण पत्ते हल्के बैंगनी रंग के हो जाते हैं और अंत में काले रंग में बदल जाते हैं। रोग का आक्रमण पौधों के मध्य भाग की पत्तियों पर पहले होता है। रोग शुरू होने के बाद वातावरण में अधिक आर्द्रता तथा 24 से 26 डिग्री सेल्सियस तापमान बना रहे तो रोग तीव्र गति से फैलता है। ऐसी अवस्था में पौधे झुलसे हुए दिखाई देते हैं।

नियंत्रण

उचित फसल चक्र अपनाएं। खेत में एवं उसके आस–पास कुष्माण्ड कुल की फसलों के अन्य पौधे न उगने दें। रोगग्रस्त लताओं को जला दें। बीज को कवकनाशी दवा से उपचारित करें। खेत में जल निकास की उचित व्यवस्था रखें। रोग के लक्षण दिखाई देते ही मेन्कोजेब (2 ग्राम) या जाइनेब (3 ग्राम) या रिडोमिल (2.5 ग्राम) कवकनाशी दवा को प्रति लीटर पानी की दर से घोल बना कर छिड़काव करें तथा आवश्यकता पड़ने पर छिड़काव को 10 दिन बाद फिर करें।

श्याम वर्ण

कुष्माण्ड कुल की विभिन्न फसलों में इस रोग के लक्षण भिन्न–भिन्न तरह के होते हैं। सामान्यतः इस रोग के प्रकोप से पत्तियों पर गहरे भूरे से काले रंग के धब्बे बन जाते हैं।

ये धब्बे तने एवं फलों पर भी पाये जाते हैं। रोग ग्रसित भाग मुरझा कर सूखने लगता है तथा फल कठोर हो जाते हैं। खरबूजे की बेल में पर्णवृन्तों पर संक्रमण होने के कारण पत्तियाँ शीघ्र गिर जाती हैं। फलों पर रोग के लक्षण खुरदरे, गोलाकार, धंसे हुए जलासिक्त धब्बों के रूप में प्रकट होते हैं। धीरे–धीरे आकार बढ़ने से धब्बे आपस में मिल जाते हैं जिसके फलस्वरूप रोग ग्रस्त भाग भद्दा एवं काला हो जाता है। यदि वातावरण में लगातार अधिक नमी बनी रहे तो धब्बों के मध्य भाग में स्थित कवक वृद्धि लाल रंग के चिपचिपे पदार्थ के रूप में दिखाई देती है। ऐसे फलों को काटने पर अंदर का गूदा भूरा–कालापन युक्त दिखाई देता है।

नियंत्रण

स्वस्थ फसल का उपचारित बीज का प्रयोग करें। बीजों को बुवाई से पूर्व कवकनाशी दवा से उपचारित करें। खेत में कम से कम 3 वर्ष का फसल चक्र अपनाएं। जल निकास की उचित व्यवस्था रखें। खेत की गहरी जुताई करें जिससे रोगी फसलों के अवशेषों में विद्यमान कवक निष्क्रिय हो जाएं। मेंकोजेब (2 ग्राम), डाईफोल्टान (2 ग्राम) या ब्लू कॉपर (2 ग्राम) दवा में से किसी एक का प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। छिड़काव 2 से 4 वास्तविक पत्तियाँ आने के साथ ही प्रारम्भ करें तथा आवश्यकतानुसार छिड़काव 10–12 दिन बाद दोहराएं।

पर्णचित्ती एवं अंगमारी रोग

कुष्माण्ड कुल की फसलों में कवक की विभिन्न जातियों द्वारा पर्णचित्ती एवं अंगमारी रोग उत्पन्न होते हैं। रोग की उग्रता एवं उसके द्वारा होने वाली हानि फसल की किस्म, क्षेत्रीय वातावरण एवं क्षेत्र में कुष्माण्ड कुल की फसलों की सघनता पर निर्भर करती है। फसल की प्रारम्भिक अवस्था में रोगों का संक्रमण होने पर हानि अधिक होती है। सरकोस्पोरा, आल्टरनेरिया, मेक्रोफोमिना, क्लेडोस्पोरियम एवं गोंदीय तना जैसे प्रमुख पर्णचित्ती एवं अंगमारी रोग हैं। इन रोगों के प्रमुख लक्षण पत्तियों पर धब्बों के रूप में विकसित होते हैं।

नियंत्रण

स्वस्थ फसल का उपचारित बीज प्रयोग करें। बीजों को बुवाई से पूर्व कवकनाशी दवा से उपचारित करें। खेत में कम से कम 3 वर्ष का फसल चक्र अपनाएं। खेत में जल निकास की उचित व्यवस्था रखें। खेत की गहरी जुताई करें जिससे रोगी फसलों के अवशेषों में विद्यमान कवक निष्क्रिय हो जाएं। मेंकोजेब (2 ग्राम), डाईफोल्टान (2 ग्राम) या ब्लू कॉपर

(2 ग्राम) में से किसी एक कवकनाशी दवा का प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। फसल में छिड़काव 2 से 4 वास्तविक पत्तियाँ आने के साथ ही प्रारम्भ करें तथा आवश्यकतानुसार छिड़काव 10–12 दिन बाद दोहराएं।

म्लानि रोग

यह रोग सर्वप्रथम तरबूज में देखा गया था परन्तु अब यह खरबूजा, लौकी, टिण्डा की फसल में भी हानि पहुँचाता है। रोग का संक्रमण पौधे की किसी भी अवस्था में हो सकता है। बीज अंकुरण से लेकर पौधे की प्रारम्भिक अवस्था में क्षति अधिक होती है। पौधे की प्रौढ़ अवस्था में भी म्लानि रोग के लक्षण स्पष्ट दिखाई देते हैं। संक्रमित बेलों की पत्तियाँ दिन में मुरझा कर लटक जाती हैं, उनका रंग पीला तथा किनारे झुलसे हुए होते हैं तथा धीरे–धीरे पूरा पौधा सूख जाता है।

नियंत्रण

इस रोग से बचाव के लिए ग्रीष्मकाल में खेत की गहरी जुताई करें तथा नीम की खली का खाद प्रयोग करें। लम्बी अवधि के फसल चक्र अपनाएं। बुवाई से पूर्व बीजों को कार्बेन्डेजिम (2.5 ग्राम प्रति किलो बीज) से उपचारित करें। खड़ी फसल में रोग दिखाई देने पर सिंचाई के तुरन्त बाद पौधों की जड़ों में कार्बेन्डेजिम (बाविष्टिन 2 ग्राम प्रति लीटर पानी) के घोल से ड्रेचिंग करें।

फल विगलन

कुष्माण्ड फसलों में फल विगलन एक गंभीर समस्या है। यह रोग सभी जगह जैसे खेत, भण्डारण, परिवहन तथा विपणन में फलों को क्षति पहुँचाता है। फसल पकते समय यदि लगातार उच्च तापमान एवं अधिक आर्द्रता बनी रहे तो फल विगलन रोग तीव्रता से बढ़ता है। कई बार खेत में स्वस्थ दिखाई देने वाले फलों में भण्डारण एवं विपणन के समय रोग के लक्षण विकसित हो जाते हैं जिससे वह खाने योग्य नहीं रहते। रोग की प्रारम्भिक अवस्था में फलों पर भूरे जलासिक्त क्षेत्र बनते हैं। धीरे–धीरे इनका आकार बढ़ता जाता है, रंग गहरा भूरा तथा जलीय मृदु विगलन में बदल जाता है। रोग की उग्र अवस्था में कवक की सफेद वृद्धि प्रभावित भाग पर फैल जाती है जो नर्म रूई से ढका होने का आभास देती है। रोग की शुरुआत फल के किसी भी भाग से हो सकती है।

नियंत्रण

फल विगलन रोग का नियंत्रण किसी कवकनाशी रसायन के प्रयोग से नहीं किया

जाना चाहिए बल्कि फसल प्रबन्धन की विभिन्न क्रियाओं के माध्यम से किया जाना चाहिए। खेत में समुचित जल निकास की व्यवस्था रखें। खेत का चुनाव उसमें पहले की गई फसलों को ध्यान में रखकर करें। बेल फैलने वाली जगह को इस तरह तैयार करें कि वहाँ सिंचाई या वर्षा जल एकत्रित न हो। फसल की लगातार निगरानी करें तथा रोग ग्रसित फलों को तोड़कर खेत के बाहर गड्ढों में दबा दें। इन्हें खाद के गड्ढे में न डालें। फलों की तुड़ाई के बाद वर्गीकरण के समय रोग ग्रस्त फलों को अलग कर दें, उन्हें भण्डारण एवं विपणन के लिए नहीं भेजें। फसल की प्रारम्भिक अवस्था में रोग एवं कीट नियंत्रण पर विशेष ध्यान दें।

जीवाणु जनित रोग

कम तापमान वाले क्षेत्रों में उगाई जाने वाली कुष्माण्ड कुल की फसलों पर जीवाणु जनित रोग का आक्रमण अधिक होता है। यह रोग विशेषकर काशीफल, खरबूजा व खीरे को अधिक प्रभावित करता है। इस रोग के मुख्य लक्षण पत्तियों पर नजर आते हैं जहाँ छोटे–छोटे अनियमित आकार के जलसिक्त धब्बे बन जाते हैं। इस रोग का प्रकोप तनों, शाखाओं व फलों में भी होता है।

नियंत्रण

उचित फसल चक्र अपनाएं। स्वस्थ फसलों से प्राप्त बीजों का ही प्रयोग करें। बीजों को स्ट्रेप्टोसाइक्लीन के घोल (0.01%) में 30 मिनट तक उपचारित कर पानी से धोकर सुखाने के बाद बुवाई करें। रोग के लक्षण दिखाई देते ही स्ट्रेप्टोसाइक्लीन (0.01%) या कॉपर आक्सीक्लोराइड (0.2%) का छिड़काव करें।

विषाणु जनित रोग

कुष्माण्ड कुल की सभी फसलों पर विषाणु जनित रोगों का अधिक प्रभाव पड़ता है जिससे उपज में भारी कमी हो जाती है। इन फसलों में विभिन्न प्रकार के विषाणुओं द्वारा संक्रमण होता है। इनमें से कुकुम्बर मोजेक वायरस 1, वाटर मेलन मोजेक वायरस 1 व 2, पपाया रिंग स्पॉट वायरस तथा स्क्वैश मोजेक वायरस प्रमुख हैं। रोगी पौधों की वृद्धि का रुकना, पत्तियों द्वारा प्रकाश संश्लेषण में कमी, फूल व फलों का झड़ना, फलों का विकृत हो जाना, इत्यादि इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं। विभिन्न विषाणुओं द्वारा होने वाला संक्रमण, लक्षणों के आधार पर पहचानना सम्भव नहीं है। यदि एक से अधिक विषाणुओं का संक्रमण साथ–साथ हो तो समस्या अधिक हो जाती है।

विषाणु रोगों का संक्रमण पौधे की किसी भी अवस्था में हो सकता है। बीज अंकुरण

के बाद की प्रारम्भिक अवस्था में संक्रमण होने पर पौधे पीले पड़कर सूख जाते हैं। पौधों के बढ़ते समय संक्रमण होने से नई पत्तियों पर मोजेक के लक्षण दिखाई देते हैं। पत्तियाँ पीली व चितकबरी दिखाई देती हैं। पत्तियों में बीच का भाग पीला होना, शिराओं का हरा होना, छोटा व मोटा होना, फफोले आना, पौधे का छोटा रह जाना, आदि विषाणु रोगों के प्रमुख लक्षण हैं। फलों पर मोजेक या पूरा फल पीला हो जाना या फलों की आकृति विकृत हो जाना विषाणु रोग के प्रमुख लक्षण हैं। कुष्माण्ड फसलों में विषाणु रोग का संचरण मुख्यतः कीटों के माध्यम से होता है जिनमें माहु (मोयला) तथा सफेद मक्खी प्रमुख हैं।

नियंत्रण

जंगली पौधों व अन्य खरपतवार जो विषाणुओं को शरण देते हैं उनको खेत के आस–पास के क्षेत्र में नहीं पनपने दें। विषाणु रहित स्वस्थ फसल से ही बीज प्राप्त करें एवं फसल की पहली–दूसरी तुड़ाई वाले फलों को बीज उत्पादन के लिए छोड़ दें। फसल की नियमित रखवाली करें तथा रोगी पौधे को प्रारम्भिक अवस्था में उखाड़ कर नष्ट कर दें। सम्भव हो तो अगेती फसल ही लें क्योंकि पछेती फसल में विषाणु रोग का प्रकोप अधिक होता है। क्षेत्रवार विभिन्न कुष्माण्ड फसलों की विषाणु रोग प्रतिरोधक किस्मों का ही प्रयोग करें। फसलों की प्रारम्भिक अवस्था से ही कीटों के नियंत्रण हेतु कीटनाशी दवाओं का प्रयोग करते रहें। मोयले की रोकथाम हेतु फास्फोमिड़ोन 85 एस. एल. 0.3 मिलीलीटर या मोनोक्रोटोफॉस 0.5 मिलीलीटर या रोगोर 1.0 मिलीलीटर दवा प्रति लीटर पानी के हिसाब से 10–12 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

सूत्रकृमि जनित रोग

कुष्माण्ड कुल की प्रायः सभी फसलों में सूत्रकृमि विशेषकर जड़गांठ रोग (root knot nematode) का प्रकोप देखा गया है। राजस्थान के शुष्क व अर्ध शुष्क प्रदेशों की बलुई रेतीली मिट्टी में इस रोग की उग्रता अधिक पाई गई है। रोगग्रस्त पौधों की पत्तियाँ पीली पड़कर आकार में कुछ छोटी रह जाती हैं तथा पौधों की बढ़वार रुक जाती है। दिन में पौधा मुरझा जाता है एवं ऐसे पौधों से उपज भी बहुत कम मिलती है। रोगग्रस्त बेल को उखाड़ कर देखने से उसकी जड़ों में विकृतियां दिखाई देती हैं तथा जड़ों पर छोटी–बड़ी अनेक गोल या अनियमित आकार की गांठे बन जाती हैं।

नियंत्रण

उचित फसल चक्र अपनाएं तथा सब्जी वाले खेतों के फसल चक्र में अनाज वाली फसलों का समावेश करें। रोगग्रस्त खेतों की मई–जून के महिने में गहरी जुताई करें एवं

सम्भव हो तो काली पॉलीथीन की चादर से ढकें। भूमि में कार्बानिक पदार्थ की कमी से सूत्रकृमियों का प्रकोप बढ़ता है अतः खेत में देशी गोबर की सड़ी एवं खली की खाद का प्रयोग करें। बुवाई पूर्व की अन्तिम जुताई के समय खेत में फ्यूराडान–3 जी 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से मिलाएं।

अजैविक विकार

कुष्माण्ड कुल की फसलों में अचानक जलवायु परिवर्तन, अत्यधिक व कम तापमान, पाला, ओले, धूल भरी आंधियाँ एवं पोषक तत्वों की कमी जैसे कई कारकों के कारण से पौधों की वानस्पतिक वृद्धि, फूल एवं फल जमाव तथा उपज एवं गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अत्यधिक तापमान से पौधों में नर फूल ज्यादा आते हैं। फसलों में परागण एवं निषेचन जैसी समस्याऐं बढ़ जाने से फल उत्पादन बुरी तरह प्रभावित होता है। अत्यधिक एवं लम्बी अवधि तक तापमान बने रहने से छोटे फल सूखकर झड़ जाते हैं एवं कई बार फलों में विकृतियां भी पैदा हो जाती हैं। अत्यधिक तापमान एवं सिंचाई में अनियमितता से छोटे एवं परिपक्व दोनों ही तरह के फलों में फटाव हो जाता है जिससे उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। दीर्घकाल तक फसल में सूखा रखने के बाद भारी सिंचाई या वर्षा हो जाने से फलों में फटाव (fruit splitting or cracking) उत्पन्न हो जाता है। लम्बी अवधि तक तापमान बने रहने से फलों का छिलका जलने (sun burn) लगता है जिससे फल विपणन योग्य नहीं रहते।

ओलावृष्टि, धूल भरी आंधियों तथा पक्षियों के भक्षण द्वारा फल क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। फलों की तुड़ाई, भण्डारण एवं परिवहन के समय भी फल क्षतिग्रस्त होते हैं। ग्रीष्म कालीन अगेती फसल में बुवाई जनवरी के अंत से लेकर फरवरी के मध्य तक की जाती है। लेकिन रात के समय में अचानक तापमान में गिरावट से नव विकसित फसल पर पाले का असर हो जाता है। पत्तियाँ झुलस कर काली पड़ जाती हैं। पाले या सर्दी से प्रभावित पौधे या बेलें प्रातःकाल तो अच्छी दिखाई देती हैं किन्तु दिन में तापमान बढ़ने के साथ फसल पर क्षति के लक्षण अधिक दिखाई देते हैं। लगातार अत्यधिक तापमान या सर्दी से फलों के रंगो में विकार उत्पन्न हो जाते हैं जिससे फल विपणन योग्य नहीं रहते। भूमि में आवश्यकतानुसार पौष्टिक एवं सूक्ष्म तत्व की अधिकता या कमी दोनों ही अवस्थाओं में पौधों की वानस्पतिक वृद्धि, फल उपज एवं गुणवत्ता प्रभावित होती है।

नियंत्रण

अजैविक विकारों का नियंत्रण किसी एक कारक की रोकथाम से नहीं होता है अतः फसल सुरक्षा के समन्वित पादप विकार प्रबन्धन के तरीकों को अपनाना चाहिए। कुष्माण्ड

फसलों की उत्तम गुणवत्ता युक्त पैदावार के लिए समन्वित फसल उत्पादन योजना जैसे "बागवानी आधारित फसल प्रक्षेत्र प्रबन्धन" की विधियों को खेत की तैयारी से लेकर उत्पाद विपणन तक अपनाना होगा।

समग्र फसल उत्पादन व्यवस्था में खेत का चुनाव, फसल चक्र, फसलों एवं किस्मों का चुनाव, सिंचाई जल प्रबन्धन, फसल प्रबन्धन, रोग एवं कीट नियंत्रण, फसल उत्पाद प्रबन्धन, फसल सुरक्षा प्रबन्धन आदि पहलुओं को विधिवत अपनाकर उत्तम गुणवत्ता युक्त फसल उत्पादन सम्भव है। प्रतिकूल जलवायु वाले क्षेत्रों में खेत के चारों ओर बाड़ी–बंदी या तार बंदी, खेत में अनुकूल वातावरण तैयार करने के लिए स्थानीय पेड़–पौधों का समावेश एवं उन पर आधारित खेती व्यवस्थाओं को अपनाना बहुत आवश्यक है। खेत की लगातार एवं सुनिश्चित देखभाल एवं निरीक्षण व्यवस्था, समय पर फल तुड़ाई एवं विपणन की व्यवस्था पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

बीज उत्पादन

खरबूजे का बीज उत्पादन करने के लिए ठीक वैसी ही फसल उत्पादन तकनीकी अपनाना होगा जैसे कि ताजा फल हेतु अपनाई जाती है। खरबूजे में पर–परागण की क्रिया होने के कारण इसकी एक किस्म के बीज का उत्पादन एक ही स्थल पर एक ही समय में ही सम्भव है। उस क्षेत्र के 500 से 1000 मीटर में अन्य कुष्माण्ड फसलें जैसे ककड़ी, काचरी, फूट ककड़ी या खरबूजे की अन्य किस्म भी नहीं होनी चाहिए।

शुष्क व अर्ध शुष्क क्षेत्र की जलवायु खरबूजा बीज उत्पादन के लिए उत्तम है। खरबूजे की उन्नत एकल किस्म की बुवाई के पश्चात जब पौधों में 2 से 4 वानस्पतिक पत्तियाँ आने लगे (बुवाई के 18–20 दिन बाद), फूल आना प्रारम्भ होने (बुवाई के 25–35 दिन बाद) तथा फलों के परिपक्व होने के समय खेत का अच्छी तरह से निरीक्षण करें जिससे बीज वाली फसल से अवांछित पौधों को अलग किया जा सके। फसल बुवाई पश्चात फसल सुरक्षा एवं सिंचाई प्रबन्धन पर विशेष ध्यान रखें। फूल आने एवं फल जमाव के दिनों में कीटनाशी दवाओं का 1–2 बार छिड़काव अवश्य करें।

अच्छे, स्वस्थ एवं भरे हुए बीजों के उत्पादन के लिए एक बेल पर 5–6 फलों को पकने हेतु रखें, शेष फलों को समय–समय पर कच्ची अवस्था में ही हटातें रहें। बुवाई के 75 से 85 दिनों के मध्य पहली फलन तुड़ाई योग्य हो जाती है इस समय कुछ फलों को काटकर उनकी गुणवत्ता की जांच अवश्य करें। अच्छी तरह से पके एवं सरलता से अलग हुए फलों (full slip stage) को ही बीज के लिए एकत्रित करें। स्वस्थ बीज उत्पादन के लिए पहली तुड़ाई के बाद से 3–4 बार अतिरिक्त तुड़ाई के फलों को ही बीज उत्पादन के लिए काम में लें।

फलों को तुड़ाई के बाद छायादार स्थान पर एकत्रित करें तथा अवांछनीय एवं कटे–फटे फलों की छंटनी कर दें। स्वस्थ फलों को 2 भागों में काटकर बीजों को रसीले पदार्थ के साथ चलनी पर डालें जिससे रसीला पानी अलग हो जाए। इसके बाद बीजों को कुण्डों में डालकर 2–3 बार साफ पानी से धो कर हल्की धूप–छांव वाली जगह पर 3–4 दिनों के लिए सुखा दें। सूखे बीजों को 8–10 दिनों के लिए हवादार कमरे में खुला रखें। अच्छी तरह से सूखे बीजों (6–8 प्रतिशत नमी) को प्लास्टिक की टंकी या थैलियों में भर कर सुरक्षित रखा जा सकता है।

❑